गांधीजी

जुगतराम दवे

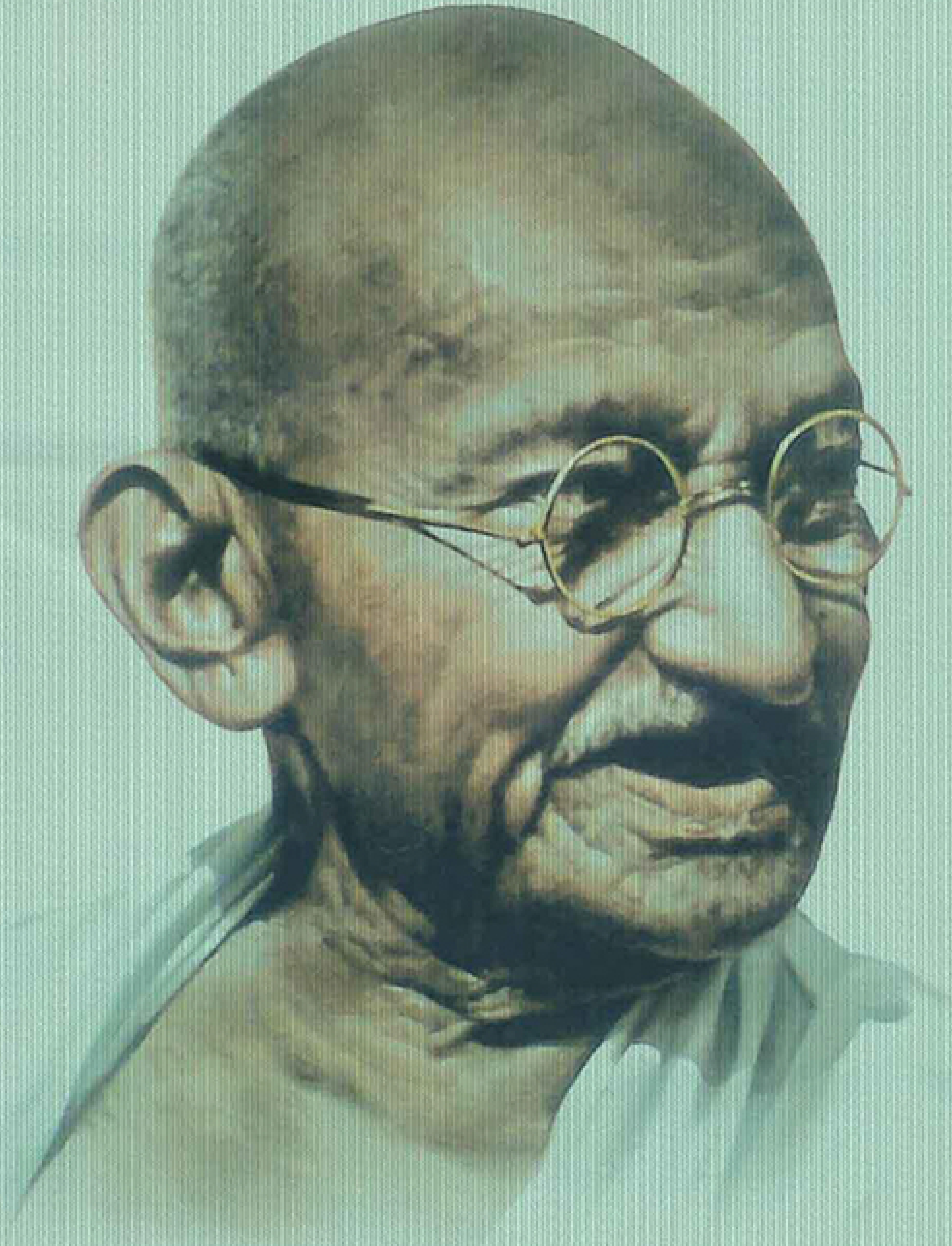

गांधीजी

लेखक

जुगतराम दवे

अनुवादक

काशिनाथ त्रिवेदी

पहली आवृत्ति, जुलाई १९४१

'गांधी जीवन-दर्शन' परीक्षा के लिए यह पुस्तक नवजीवन ट्रस्ट की ओर से रिआयत दरसे प्रकाशित हुई है।

मुद्रक और प्रकाशक

विवेक जितेन्द्र देसाई

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर

अहमदाबाद - ३८० ०१४

फोन : ०७९ - २७५४०६३५, २७५४२६३४

E-mail : sales@navajivantrust.org | Website: www.navajivantrust.org

प्रस्तावना

पूज्य गांधीजीकी साठवीं जयन्तीकी यादमें ये रेखाचित्र पहली बार लिखे गये थे। तबसे बरसों बीत चुके हैं, और ईश्वरकी करुणासे गांधीजीका जीवन बालकसे भी अधिक जोशके साथ बढ़ता रहा है।

स्वभावत: इस अवसर पर कुछ नये रेखाचित्र इसमें शामिल किये गये हैं। पुराने चित्रोंकी वस्तु और क्रममें भी कुछ परिवर्तन किये गये हैं।

गुजरातके बालक इसे उमंगके साथ पढ़ें और बापूजीकी आत्माको सुख पहुँचानेवाले बनें !

जुगतराम दवे

वेड़छी आश्रम,
उद्योगशाला
१३-५-१९३९

बालमित्रोंसे

पिछले बारह बरससे गुजरातके बालक इस पुस्तकको बड़े चावके साथ पढ़ते आ रहे हैं। बारह बरस पहले श्री जुगतरामभाईने इसे गुजरातके हमारे बालमित्रोंके लिए लिखा था। उन्हीं दिनोंमें मैंने इसका एक अनुवाद किया था, जो बादमें कहीं लापता हो गया। बारह साल बाद अबको मुझे मौका मिला और मैंने इसका दुबारा अनुवाद किया।

पुस्तक आपके हाथमें है। आप इसे पढ़िये। उत्साह और उमंगके साथ पढ़िये। बार-बार पढ़िये और पढ़कर गांधीजीके जीवनको समझनेकी कोशिश कीजिये।

ईश्वर करे, पूज्य गांधीजीके जीवनकी ये झाँकियाँ हममें से हरएकको ऊँचा उठाने और आगे बढ़नेवाली हों !

गांधी-सप्ताह **काशिनाथ त्रिवेदी**

२-१०-१९४१

सूची

प्रस्तावना
बालमित्रों से
१. कहाँके हैं ?
२. जाति
३. पुतलीबाई
४. कस्तूरबा
५. परीक्षा
६. सत्य
७. प्रह्लाद और हरिश्चन्द्र
८. वैष्णव
९. चरखा
१०. गांधीजीकी रहन-सहन
११. सत्याग्रहीकी दिनचर्या
१२. मौन-वार
१३. गांधीजीकी विशेषतायें
१४. आश्रम – १
१५. आश्रम – २
१६. नौकर
१७. इस पार गंगा : उस पार जमुना
१८. जिन्दा लाठियाँ
१९. पोशाकका इतिहास
२०. खादी
२१. खादीकी टोपी
२२. सफेद टोपी
२३. सफेद टोपी जिन्दाबाद !
२४. गांधी टोपी
२५. सिर्फ कुर्ता
२६. भाषाओंका ज्ञान
२७. खुराकके प्रयोग
२८. कुदरती इलाज
२९. दरिद्रनारायणके दर्शन
३०. लँगोटी
३१. रेल-घर : रेल-आश्रम
३२. जेल-महल
३३. तीन प्रतिज्ञायें
३४. 'कुली' बैरिस्टर
३५. हाथ पकड़कर उतारा
३६. शिकरमकी बीती
३७. धक्का
३८. भाईने पीट दिया
३९. मीर आलम मुरीद बना
४०. जबर्दस्त तूफान
४१. हमारे पापका फल
४२. हरिजन पहले
४३. आश्रममें हरिजन
४४. दो ऐतिहासिक कूच
४५. राष्ट्रीय उपवास
४६. प्रेमके उपवास
४७. महान् उपवास
४८. स्वराज्य
४९. अंग्रेजोंसे
५०. प्रेम .
५१. गांधीजीकी अहिंसा
५२. आत्मबल

१. कहाँके हैं ?

अगर कोई पूछे – 'गांधीजी कहाँके हैं ?'

तो पोरबन्दर सबसे पहले कह उठेगा – 'मेरे यहाँके हैं। यहीं उनका जनम हुआ है।'

सागरके उस पारसे फिनिक्स और टॉल्स्टॉय आश्रम पुकार उठेंगे - 'भाई ! उनका सच्चा जनम तो हमारे यहाँ हुआ। क्या इतने ही में भूल गये ?'

अहमदाबाद कहेगा – 'लेकिन आश्रम तो उन्होंने मेरी साबरमतीके किनारे बसाया था न ?'

पूना अपना हक जताते हुए कहेगा – 'यरवदाका जेल तो मेरा है न? बापूका 'यरवदा मन्दिर', उनका वह 'जेल-महल' क्या इस तरह भूल जानेकी चीज़ है ?'

बिहारका किसान क्यों पीछे रहने लगा ? वह कहेगा – 'आपकी जो मरज़ी हो, कह लें; मगर गांधीजी हैं तो हमारे ! आपको क्या पता कि हमारे नीलके खेतोंमें उन्होंने कितने-कितने चक्कर काटे हैं ?'

क्या पंजाब चुपचाप इन दावोंको सह सकता है ? नहीं, वह अपनी बुलंद आवाज़से पूछेगा – 'कया आप इस हक़ीक़तसे इनकार करना चाहते हैं कि गांधीजीको जगानेवाला, होशमें लानेवाला, मेरा जलियाँवाला बाग ही है ?'

कलकत्ता कहेगा - 'लेकिन भाई, असहयोगका बिगुल तो मेरे आँगनमें बजा था न ?'

बम्बई पूछेगी – 'पर मेहरबान, सत्याग्रहका आरम्भ करने तो वे मेरे ही घर आये थे न ?'

बारडोलीका दावा भी सुनने लायक होगा। वह कहेगी – 'नक्कारखानेमें तूतीकी आवाज़ भला कौन सुनेगा ? पर सच तो यह है, कि गांधीजीने लड़ाईके लिए मैदान मेरा ही चुना था।'

इसी तरह दिल्ली भी गांधीजीको अपना समझती है; क्योंकि गांधीजीने अपने उपवासके पवित्र इक्कीस दिन वहीं बिताये थे। बेलगाँवको अपना दावा किसीसे कम नहीं मालूम होता। हिन्दुस्तानके राष्ट्रपतिका ताज बेलगाँवकी महासभाने ही गांधीजीको पहनाया था न?

और राजकोट, जहाँ उन्होंने अपने प्राणोंकी बाज़ी लगाई थी, वह भी तो उन्हें अपना ही समझता है।

इन सारी बातोंकों सुनकर पहाड़ोंका राजा हिमालय होठोंमें मुसकराता है। वह कहता है – 'कौन इन लोगोंके मुँह लगे ? इन बेचारोंको क्या पता कि गांधीजी मन-ही-मन किसके लिए तड़पा करते हैं ?'

पर धन्य है, उस छोटे-से सेवाग्रामको ! बीच हिन्दुस्तानमें बसे हुए इस नन्हें-से गाँवका कोई नाम तक नहीं जानता था। औरोंकी तरह न वह अपना दावा लेकर आगे बढ़ा, न झगड़ा, न फरियाद की। फिर भी बड़ा भागवान है वह, कि गांधीजी आज उसीको अपनाये हुए हैं। इसीलिए न साबरमतीका सन्त अब सेवाग्रामका सन्त कहलाता है ?

२. जाति

वैसे गांधीजी मोढ़ बनियोंकी जातिमें पैदा हुए हैं। पर वे खुद अपनेको क्या कहते हैं ?

एक बार सरकारने उन पर राजद्रोहका मामला चलाया। अहमदाबादकी अदालतमें मुकदमेकी सुनवाई हो रही थी। अदालतमें न्यायाधीश (मजिस्ट्रेट) अपराधीका नाम-पता पूछता ही है। गांधीजीसे भी पूछा गया :

'आपका नाम क्या है ?'

'मोहनदास करमचंद गांधी।'

'आप रहते कहाँ हैं ?'

'सत्याग्रह आश्रम, साबरमती।'

'आप का पेशा क्या है ?'

'किसानी और जुलाहागिरी।'

यह आखिरी जवाब सुनकर न्यायाधीश सन्न रह गये ! जनता दंग रह गई !

३. पुतलीबाई

गांधीजीकी माँका नाम पुतलीबाई था। वे बड़ी भावुक थीं। बिना पूजापाठ किये कभी खाना न खाती थीं और रोज देवदर्शनके लिए मन्दिरमें जाती थीं।

महीनेमें दो बार बिला नागा एकादशीका व्रत रखती थीं, और दिनमें एक बार खाकर रह जाना तो उनके लिए बायें हाथका खेल था।

बारिशके चार महीनोंमें, चातुर्मासमें, वे तरह-तरहके व्रत-उपवास किया करती थीं – कभी चान्द्रायण, कभी एकाशन, कभी कुछ, कभी कुछ।

किसी साल चौमासेमें वे कुछ कड़े व्रत भी किया करती थीं। एक व्रत सूरजवंशीका था, यानी जिस दिन सूरज दिखाई दे जाय, उसी दिन खाना, वरना उपासे रह जाना।

ऐसी भोली और भावुक माँ पर बच्चोंका बेहद प्यार हो, तो उसमें अचरज ही क्या? जिस दिन माँको भूखों रहना पड़ता, बच्चे दिन-दिन भर बादलोंकी ओर ही देखा करते, और ज्यों ही सूरत दीखता, दौड़कर माँके पास खबर देने पहुँच जाते :

'माँ ! माँ ! दौड़ो, दौड़ो, सूरज निकला।' लेकिन माँ पहुँचें, पहुँचें, इतनेमें तो सूरज फिर बादलोंमें छिप जाता और यों माँको कई बार भूखों रह जाना पड़ता।

मगर माँ बातकी ऐसी तो पक्की थीं, कि दुनिया चाहे उलट जाये, खुद बीमार पड़ जायँ, अरे, जान चली जाये, तो भी व्रत तो व्रत ही रहता था !

ऐसी टेकवाली, ऐसी भली, ऐसी भोली और भावुक माँ जिनकी थीं, उन गांधीजीका फिर क्या पूछना था ?

४. कस्तूरबा

शायद तुममें से कइयोंने गांधीजीको देखा होगा, पर कस्तूरबाको तो शायद बिरलों ही ने देखा होबी ! वे गांधीजी जैसे महापुरुषकी पत्नी हैं। तुम सोचते होंगे कि वे महारानी बनकर रहती होंगी। माताजीके नाते लोगोंसे अपनेको पुजवाती होंगी। उनका ठाट-बाट ही कुछ निराला रहता होगा। आश्रममें रहते समय वे गांधीजीकी बराबरीसे बैठती और लोगोंको दर्शन दिया करती होंगी ! पर दरअसल ऐसी कोई बात नहीं। 'बा' का तो ढंग ही कुछ और है। वे कभी आगे आतीं ही नहीं। आश्रममें जाकर देखो, तो उन्हें कहीं न कहीं किसी काममें मशगूल पाओ ! कभी रसोईघरमें रोटी बेलती दिखाई पड़ेंगी, कभी गांधीजीका खाना तैयार करती मिलेंगी, कभी किसी बीमारकी सेवामें, तीमारदारीमें, लगी होंगी। हाँ, जब कभी गांधीजी बीमार होते हैं, तो उनका सर दबानेका काम कस्तूरबा ही करती हैं, और ऐसे समय वे उनके पास ज़रूर दिखाई पड़ जाती हैं।

कस्तूरबाकी यह आदत नहीं कि वे सभाओंमें या जलसोंमें गांधीजीके साथ बराबरीसे जायँ, और मंच पर खड़ी होकर भाषण करने लगें। उनका तो तरीका ही कुछ और है। अकसर तो वे जातीं ही नहीं, मुकाम पर ही रहती हैं; पर जब जाती हैं, तो चुपचाप पीछे-पीछे जाती हैं, और सभाके किसी कोनेमें, बहनोंके बीच, चुपके-से बैठ जाती हैं। किसीको ख़याल तक नहीं होता कि ये कस्तूरबा हैं, गांधीजीकी पत्नी हैं !

कस्तूरबाकों बड़ी बनकर घूमनेका जरा भी शौक नहीं। बड़प्पनके दिखावेसे उन्हें कोई मतलब नहीं। वे तो एक ही बात जानती हैं - गांधीजीके पीछे-पीछे चलना और उनकी सेवा करना ! सीताने रामके लिए राजपरिवारका सुख छोड़ा, और जंगलकी राह पकड़ी थी। कस्तूरबा भी इसी तरह शाही सुखोंका त्याग करके गांधीजीके साथ आश्रमवासिनी बनी हैं।

इस जमानेमें तुम्हें कहीं सतीके दर्शन करने हों, तो कस्तूरबाके दर्शन कर लो।

५. परीक्षा

गांधीजी अंग्रेजीके दूसरे या तीसरे दर्जेमें पढ़ते थे।

एक बार उनके स्कूलमें कोई इन्स्पेक्टर इम्तहान लेने आये और उन्होंने गांधीजीकी कक्षामें सभी छात्रोंको अंग्रेजीके पाँच शब्द लिखाये।

वर्ग-शिक्षक पासमें खड़े थे। वे घूर-घूरकर तिरछी निगाहसे देख रहे थे कि कौन क्या लिख रहा है। उनकी छाती धड़क् रही थी। वे डरते थे कि कहीं लड़कोंने गलत लिख दिया, तो डाँट उन पर पड़ेगी। इन्स्पेक्टर कहेंगे: 'मास्टर पढ़ाना नहीं जानता।'

मास्टरने देखा कि मोहनदासने 'केटल' (kettle) शब्दके हिज्जे गलत लिखे हैं। पर बेचारे क्या करते ? वे घूमते घामते मोहनदासके पास गये, और अपने बूटकी ठोकरसे उनका पैर दबाकर इशारा करने लगे कि वह पासवाले लड़केकी पट्टी देख लें। लेकिन मोहनदास तो इन बातोंसे कोसों दूर रहनेवाले थे। उन्हें ख़याल तक न हुआ कि मास्टर 'चोरीका इशारा कर रहे हैं। फिर वह कैसे समझ लेते कि शिक्षक दूसरेका देखकर सही लिखानेको सुझा रहे हैं ?

दूसरे दिन शिक्षकने मोहनदाससे कहा – 'निरे बुद्धू हो जी तुम ! कितने इशारे किये, मगर तुम्हारी समझमें कुछ खाक भी न आया।'

गांधीजीने शिक्षकसे तो कुछ नहीं कहा, मगर अपने मनमें यह ज़रूर समझ लिया कि शिक्षककी बात मानने लायक न थी; वह गलत थी और पापकी जड़ थी।

६. सत्य

बचपन ही से गांधीजीको सत्य या सचाई बहुत प्यारी रही है।

उन्होंने अपनी 'आत्मकथा' में लिखा है कि कैसे वे अपने बचपनमें कुछ दिनोंके लिए बुरी सोहबतमें पड़ गये थे और फिर कैसे उससे छूटे |

बचपनमें अपने साथी-संगियोंके साथ गांधीजीको भी बाजारका खाने और बीड़ी वगैरा पीनेका शौक लग गया था। ऐसे कामोंके लिए माँ-बापसे तो पैसे माँगे नहीं जा सकते। इसलिए इन लोगोंने घरके नौकरोंकी जेबसे पैसे चुराना सीख लिया।

मोहनदासको ये काम दिलसे पसन्द नहीं थे; मगर क्या करते ? दोस्तोंको खाते-पीते देखकर मन मचल पड़ता था, और दिल बेकाबू हो जाता था।

यों होते-होते खाने-पीनेका खर्च, और खर्चके साथ कर्ज बढ़ने लगा। दूकानदारोंके तकाजे शुरू हो गये। अब क्या हो ? ख़याल हुआ, नहीं, डर-सा लगने लगा, कि कहीं दूकानदार दस जनोके सामने पैसे न माँग बैठें ! कहीं घर जाकर पिताजीसे न कह बैठें !

नौकरोंकी जेबसे तो पैसे दो पैसे ही मिल पाते थे; और कर्ज बेहद बढ़ गया था। अब क्या हो ?

दोस्तोंकी टोली परेशान हो उठी। इस टोलीमें मोहनदासके बड़े भाई भी शामिल थे। इस आफतसे बचनेकी उन्हें एक ही तरकीब सूझी, और वह चोरीकी तरकीब थी। उन्होंने कहा - "मेरे हाथमें सोनेका यह कड़ा है; इसमें से एक तोला सोना कटवाकर कर्ज चुकाया जा सकता है, और बात भी छिपाई जा सकती है।"

मोहनदासको यह अटपटा तो लगा; लेकिन विरोध करनेकी उनकी हिम्मत न हुई। उन्होंने कड़ा कटने दिया।

इस तरह कर्ज तो अदा हो गया, पर जिसे सचाई प्यारी थी, वह तो मन-ही-मन बेचैन हो उठा।

आत्मा उसकी पुकार उठी – 'अरेरे, मैं इस चोरीमें क्यों शामिल हुआ ? मैंने छिपकर खाया, छिपकर बीड़ी पी ! भाड़में जाय यह खाना, और धूलमें मिले यह धुआँ उड़ाना !'

फिर ख़याल आया – 'हाय-हाय ! कैसी गलती हुई ! खुद ठगाया और पिताजीको भी ठगा।'

मोहनदास उदास रहने लगे – उन्हें न खाना अच्छा लगता था, न पीना। जो गलती हो गई थी, उसका ख़याल दिनरात दिलको कचोटा करता था।

आखिर उन्होंने तय कर लिया – 'पिताजीके सामने जाकर अपनी गलती कबूल करूँगा। वे नाराज होंगे, नाराज होंगे, नाराजी सह लूँगा। मारेंगे, मार खा लूँगा।'

पिताजीके सामने जाकर मुँहसे कुछ कहनेकी हिम्मत कैसे हो ? मोहनदासने एक चिट्ठी लिखी। चिट्ठीमें अपनी गलतियोंका पूरा ब्यौरा लिखा; गलतियाँ कबूल कीं और पिताजीसे माफी माँगी। आँसूभरी आँखों और काँपते हाथों चिट्ठी पिताजीको दी। पढ़ते ही उनकी छाती भर आई। आँखें सजल हो ऊठीं। उन्होंने कसूर माफ कर दिया, और अपने सत्यवादी बेटेको गले लगा लिया !

७. प्रह्लाद और हरिश्चन्द्र

इन दोनों सत्याग्रहियोंकी कथा पर गांधीजी बचपन ही से मुग्ध हैं। जो खुद सचाइसे प्यार करता है, उसे सच बोलनेवालोंकी, सत्यवादियोंकी, कथायें क्यों न प्यारी लगेंगी ?

राजा हरिश्चन्द्रने सत्यके लिये कितनी तकलीफें उठाई ? राज खोया, पाट खोया, जंगलोंमें मारे-मारे फिरे, स्त्री बेची, पुत्र बेचा और फिर खुद भी चाण्डालके हाथ बिक गये। रोंगटे खड़े करनेवाली मुसीबतें सहीं, लेकिन सचाई न छोड़ी। कहते हैं, गांधीजीने बचपनमें 'हरिश्चन्द्र' का एक नाटक देखा था। बस, जिस दिन वह नाटक देखा, उस दिनसे वे हरिश्चन्द्रके ही सपने देखने लगे। हरिश्चन्द्रकी याद आते ही वे अकसर रो पड़ते थे। उन्होंने लिखा है कि आज भी वे उस नाटकको पढ़ें, तो उनकी आँखें आँसुओंसे तर हुए बिना न रहें। वे कहा करते हैं कि हरिश्चन्द्रकी तरह दुःख सहने और तिस पर भी सचाईसे तिलमात्र न हटनेका नाम ही सत्य है।

गांधीजीको हरिश्चन्द्रसे भी बढ़कर प्रह्लादकी कथा प्यारी है। हरिश्चन्द्र तो राजा थे, अनुभवी थे और ज्ञानी थे।

लेकिन प्रह्लाद ?

वह तो एक नन्हा-सा सुकुमार बालक था। राक्षसके घर पैदा होकर भी उसने भगवानका नाम लेनेकी हिम्मत दिखाई थी। पिताने उसे पहाड़ पर से फिंकवाया, पर उसने रामनाम न छोड़ा। समुद्रमें डुबोया, तो भी रामनाम न छोड़ा। जलते हुए खम्भेसे लिपटनेको कहा गया, वह निधड़क लिपट गया, पर उसने रामनाम न छोड़ा।

गांधीजी प्रह्लादके इस सत्याग्रहको हमेशा अपने सामने रखते हैं। और उठते-बैठते उसीका उदाहरण दिया करते हैं – 'प्रह्लादके समान कमसिन बालक भी सत्याग्रहकी ताकत दिखा सकता है। सत्ग्रहके लिए न पहलवानोंकी-सी ताकत ज़रूरी है, न राजाके-से सैन्यबलकी आवश्यकता है।'

८. वैष्णव

अगर कोई गांधीजीसे पूछे : 'आपका धर्म क्या है ?' तो वे कहेंगे : वैष्णव।'

जो उन्हें नहीं जानते, उनको यह सुनकर अचरज हो सकता है। क्योंकि गांधीजी न कभी मन्दिरमें जाते हैं, न घरमें देवताकी पूजा करते हैं, न भगवानको भोग लगाते हैं, और न खुद गलेमें कण्ठी या माला पहनते हैं। तिस पर जात-पाँतका कोई ख़याल नहीं रखते – हर किसीके साथ बैठकर खा लेते हैं।

भला, ऐसे आदमीको कोई वैष्णव कह सकता है ?

मगर गांधीजीसे पूछो, तो वे कहेंगे : 'भई, मैं तो अपनेको वैष्णव ही मानता हूँ। नरसिंह मेहताने वैष्णवके जो लक्षण बताये हैं, उनको मैं जानता हूँ और वैसा वैष्णव बननेकी कोशिश कर रहा हूँ। मेहताजी कहते हैं :

वैष्णव जन तो तेने कहीऐ
जे पीड पराई जाणे रे
परदुःखे उपकार करे तोये,
मन अभिमान न आणे रे।
वैष्णव ०

सकळ लोकमां सहुने वन्दे,
निन्दा न करे केनी रे;
वाच काछ मन निश्चळ राखे,
धन धन जननी तेनी रे।
वैष्णव ०

समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी,
पर स्त्री जेने मात रे;

जिह्वा थकी असत्य न बोले,
परधन नव झाले हाथ रे।
वैष्णव ०

मोह माया व्यापे नहि जेने,
दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे;
रामनामशुं ताळी रे लागी,
सकळ तीरथ तेना तनमां रे।
वैष्णव ०

वणलोभी ने कपटरहित छे,
काम क्रोध निवार्या रे;
भणे नरसैंयो, तेनुं दरशन करतां,
कुळ इकोतेर तार्यां रे।
वैष्णव ०

वैष्णव वह है, जो दूसरोंकी तकलीफको समझता है; दुःखमें दूसरोंकी मदद करता है; पर मनमें जरा भी गरूर नहीं आने देता |

वैष्णव वह है, जो दुनियामें सबके सामने झुकता है, किसीकी निन्दा नहीं करता, और खुद मन, वचन और शरीरसे निश्चल रहता है।

वैष्णव वह है, जो सबको बराबरीकी निगाहसे देखता है, जो तृष्णा छोड़ चुका है, जो पराई औरतोंको माँ समझता है, जबानसे कभी झूठ नहीं बोलता, और पराये धनको कभी हाथ नहीं लगाता।

वैष्णव वह है, जिस पर मोह और मायाका कोई असर नहीं होता, जिसके मनमें पक्का वैराग्य जमा हुआ है, और जिसे रामनामकी लौ लग चुकी है।

वैष्णव वह है, जो छल-कपटसे दूर रहता है, लालचको पास नहीं फटकने देता, और काम-क्रोध पर सवारी कसे रहता है।

नरसिंह मेहता कहते हैं कि जो ऐसा वैष्णव है, उसकी माताको सौ-सौ बार धन्यवाद है; उसके शरीरमें सभी तीर्थ समाये हुए हैं; और उसका दर्शन करनेसे मनुष्यकी इकहत्तर पीढ़ियोंका उद्धार हो जाता है।

९. चरखा

'हे भगवन्! अगर मौत ही देनी हो, तो ऐसी देना कि एक हाथमें चरखेका हत्था हो, दूसरेमें पूनी रह गई हो, और आँखें मुँद जायँ।'

भला भगवानसे ऐसी प्रार्थना कौन करता होगा ?

गांधीजी ही तो; और कौन कर सकता है ?

चरखेसे उन्हें बेहद प्यार है।

रोज चरखे पर सूत कातना उनका एक अटल नियम है; व्रत है। कैसा भी वक्त क्यों न हो, गांधीजी चरखा कातेंगे और ज़रूर कातेंगे।

सफरमें भी वे चरखेको हमेशा अपने साथ रखते हैं, और फुरसत निकालकर ज़रूर कात लेते हैं। बीमारी और कमजोरीमें भी वे कातना नहीं छोड़ते! उनका व्रत ही ऐसा है।

जब जेल जाते हैं, तो वहाँ भी वे अपने प्राणोंसे प्यारे चरखेको ज़रूर साथ ले जाते हैं।

यरवदा जेलमें गांधीजीने दो चक्कोंवाले चरखे पर खूब काता और कातते-कातते उसमें कई तरहके सुधार भी किये। यही सुधरा हुआ सुन्दर, नाजुक, नन्हा चरखा आज 'यरवदा चक्र' के नामसे मशहूर है।

चरखेमें वह ताकत है कि उससे देशके करोड़ों नंगे अपना तन ढँक सकते हैं, और भूखे भरपेट भोजन पा सकते हैं। चरखेके सूतमें देशको स्वराज्य दिलानेकी शक्ति है। उसीसे गांधीजी उसे कामधेनु कहते हैं, और उसकी हलकी, मीठी गूँजमें मीठे-से-मीठे संगीतका अनुभव करते हैं।

देशमें करोड़ों ऐसे गरीब हैं, जो दिन-रात पसीना बहाने पर भी भरपेट खा नहीं पाते। उनके इस दुःखका अनुभव हमें कैसे हो सकता है ? तभी न, जब हम भी उनकी तरह कुछ मेहनत करें, कुछ पसीना बहायें! इसलिए गांधीजी कहते हैं कि जिन्हें देशके गरीबोंका दुःख दूर

करना है, और उनके दुःखमें शरीक होना है, उन्हें हर रोज कमसे कम आध घण्टा सूत ज़रूर कातना चाहिये।

हिन्दुस्तानके तिरंगे झण्डेके बीचोंबीच चरखा छपानेका ख़याल भी गांधीजीका ही है। झण्डे पर छपा हुआ वह चरखा दुनियाके बीच यह ऐलान करता है कि जो स्वराज्य करोड़ों गरीबोंका है, वही सच्चा स्वराज्य है।

१०. गांधीजीकी रहन-सहन

क्या तुम जानते हो, गांधीजीकी रहन-सहन कैसी है ? जानना चाहोगे क्या कि वे किस तरह रहते हैं ?

तो सुनो :

वे रोज सवेरे चार बजे नियमसे उठते हैं। दतौन करके हाथ-मुँह धोते और फिर प्रार्थनामें शामिल होते हैं। प्रार्थनाके बाद वे कभी थोड़ा आराम करते, कभी लिखते-पढ़ते और फिर नीबूका रस और शहद मिला हुआ गरम पानी पीते हैं। उसके बाद वे कसरतके तौर पर रोज नियमसे घूमने जाते हैं।

लौटते समय आश्रमके बीमार भाई-बहनोंको देखते हुए, उनका कुशल-मंगल पूछते हुए, वापस अपनी जगह पर आते हैं।

फिर वे रसोईघरमें जाकर अपने हिस्सेका काम करते हैं। इसी समय वे थोड़ा नाश्ता भी कर लेते हैं।

इसके बाद या तो आनेवाले मुलाकातियोंसे बातचीत करते हैं, या आये हुए पत्रोंको पढ़ते और उनके जवाब लिखते हैं, या 'नवजीवन' और 'यंग इन्डिया' के लिए लेख लिखते हैं।

भोजनके समय परोसनेका काम वे बड़े चावसे करते हैं।

दोपहरको वे नियमसे चरखा चलाते हैं। दिनमें कमसे कम एक घण्टा, और कमसे कम १६० तार कातनेका उनका नियम है।

शामको सूरज डूबनेसे पहले ही वे भोजन कर लेते हैं, और भोजनके बाद थोड़ा घूम लेते हैं।

शामको सात बजे जब प्रार्थनाकी घण्टी बजती है, वे घूमकर वापस आ जाते हैं।

इसके सिवा, गांधीजी अपने समय-पत्रकके अनुसार कभी आश्रमकी बहनोंको, कभी विद्यार्थियोंको और कभी बालमन्दिरके बालकोंको कुछ पढ़ाते-लिखाते भी हैं।

इस तरह सारा दिन काम करके रातके साढ़े नौ बजे वे सो जाते हैं। लेकिन कभी-कभी काम इतना ज्यादा हो जाता है कि रातमें देर तक जागकर उसे पूरा करना पड़ता है। यों, देरसे सोने पर भी सुबह चार बजे तो वे उठते ही हैं। इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता।

११. सत्याग्रहीकी दिनचर्या

ऊपर तुम देख चुके कि एक सत्याग्रहीकी रहन-सहन और उसकी दिनचर्या कैसी होती है।

उसका एक भी मिनट निकम्मा नहीं जाता। अपना एक क्षण भी वह आलस्थमें नहीं बिताता।

गांधीजीकी दिनचर्याकी दूसरी खूबी यह है कि वे अपने रोजके कामका समय-पत्रक हर रोज बनाते हैं, और उसके मुताबिक एक-एक मिनटकी पाबन्दी रखते हैं। जिस कामके लिए जो समय तय कर लेते हैं, उसे ठीक उसी समय शुरू करते हैं, और जितना समय उसे देना होता है, उतना ही देते हैं। अपना सारा दिन वे घड़ीके काँटे पर, घड़ीकी-सी नियमितताके साथ बिताते हैं। फिर, दिनभर जितना काम वे करते हैं, उसका रोजनामचा भी बराबर लिखते हैं, और रातमें सोनेसे पहले उसे एक बार देखकर और पूरा करके सोते हैं।

१२. मौन-वार

गांधीजी हर सोमवारको मौन रखते हैं, यानी उस दिन वे किसीसे बोलते या बातचीत नहीं करते। कैसा भी ज़रूरी काम क्यों न आ पड़े वे अपना मौन नहीं तोड़ते। ज़रूरत पड़ने पर जो कहना होता है; कागज पर लिखकर कह देते हैं, लेकिन बोलते तो हरगिज नहीं।

हफ्तेमें एक दिन इस तरह मौन रहनेसे उन्हें बड़ी शान्ति मिलती है। उस दिन न किसीसे बातचीत करनी पड़ती है, न सभाओंमें भाषण देने पड़ते हैं, और न कहीं घूमने-भटकने जाना पड़ता है। इस तरह उस दिन हलचल या चहल-पहलका सारा काम बन्द रहता है।

मौन-दिनकी इस शान्तिमें उनको काफी आराम मिल जाता है। लेकिन जानते हो, इस आरामका उपयोग वे किस तरह करते हैं ?

आरामका यह दिन गांधीजी सोकर तो बिता नहीं सकते। हफ्तेके अख़ीरमें कामका जो ढेरों बोझ बढ़ जाता है, मौन-दिनकी शान्तिमें उसीको उतारकर वे हलके हो जाते हैं।

यों मौनपूर्वक चुपचाप काम करनेमें जो आनन्द आता है, वह अनुभव करनेकी चीज है।

१३. गांधीजीकी विशेषतायें

गांधीजीकी कुछ विशेषतायें, उनकी कुछ खासियतें, जानने लायक हैं।

वे कभी धीमी या सुस्त चालसे नहीं चलते। उनकी चालमें हमेशा फुर्ती रहती है।

वे कभी झुककर या सिमटकर नहीं बैठते। हमेशा तनकर और स्थिर आसनसे बैठते हैं।

वे कभी मेजका सहारा लेकर नहीं लिखते। तनकर बैठते और घुटनों पर कागज रखकर ही लिखते हैं।

वे जो कुछ लिखते हैं, उसे दुबारा पढ़कर ही आगे जाने देते हैं। एक छोटा-सा कार्ड लिखेंगे, तो उसे भी दुबारा पढ़ेंगे, जो कुछ घटाना-बढ़ाना होगा, घटायेंगे-बढ़ायेंगे; और तभी उसे डाकखाने जाने देंगे।

उन्हें सफाई और सुघड़ता बहुत प्यारी है। यही वजह है कि वे अपने कपड़े-लत्ते और दूसरी चीजोंको हमेशा बहुत ही साफ और सजावटके साथ रखते हैं।

गांधीजी हरएक कामको बड़ी खूबी और बारीकीके साथ करते हैं।

वे कभी अपना फोटू खिंचवाने नहीं बैठते।

वे काममें कितने ही क्यों न मशगूल हों, फिर भी कोई बालगोपाल, कोई राजा-बेटा, उनके पास जा पहुँचता है, तो वे उससे खेले बिना रह नहीं सकते।

बातचीत करते समय गांधीजी अकसर खूब खिलखिलाकर हँसते हैं। हँसते क्या हैं, मानो फूल बिखेरते हैं।

१४. आश्रम- १

अहमदाबाद गुजरात का राजनगर है। इसी राजनगरके नजदीक साबरमती के किनारे गांधीजीका पुराना आश्रम है।

एक जमाना था, जब इस आश्रममें गांधीजी रहते थे, कस्तूरबा रहती थीं, और दूसरे बहुतेरे भाई और बहन, बच्चे और बच्चियाँ भी रहती थीं।

आश्रममें गुजराती थे, महाराष्ट्री थे, पंजाबी और सिंधी थे, मद्रासी और नेपाली भी थे। हिन्दुस्तानके सभी सूबोके लोग वहाँ रहते थे। यूरोपके गोरे व चीन और जापानके पीले लोग भी रहते थे।

वे सभी खादी पहनते और नियमसे कातते थे।

वे सुबह चार बजे उठकर प्रार्थनामें आते और फिर शामको सात बजेकी प्रार्थनामें भी शरीक होते। प्रार्थनामें वे श्लोक-पाठ करते, भजन गाते और रामधुनकी रट लगाते। वे गीताका पारायण करते; और अकसर प्रार्थनाके बाद गांधीजीका प्रवचन सुनते।

सभी आश्रमवासी एक साथ, एक जगह, बैठकर खाते। भोजनमें मिर्च, मसाला, हींग आदिका बिलकुल उपयोग न करते। सादा और सुस्वादु भोजन आश्रमकी विशेषता रहती। सुबह-शाम नियत समय पर सब खाने बैठते और शांतिमंत्र बोलकर खाना शुरू करते। ऐसे समय कई बार गांधीजी खुद सबको परोसकर खिलाते।

आश्रममें हरिजन भी सबके साथ ही रहते और साथ ही काम करके आश्रमके भोजनालयमें भोजन करते।

आश्रममें सफाईका बहुत ख़याल रखा जाता। जहाँ-तहाँ थूकना, कागज फेंकना, जूठन गिराना या पेशाब करना मना था।

आश्रमवासी जहाँ-तहाँ पाखाना फिरकर आसपासके जंगलको गंदा नहीं करते। वे सुंदर, हवादार और उजेले कमरोंमें पाखानेका प्रबंध करते हैं, और पाखाना फिरनेके बाद मैलेको साफ मिट्टीसे ढँक देते हैं। आश्रमवासी अपने पाखानोंकी सफाई खुद ही करते हैं। इससे जो खाद मिलती है, उसके कारण आश्रमके बगीचे खूब पनपते और लहलहाते रहते हैं !

१५. आश्रम-२

गांधीजीके साबरमतीवाले आश्रममें एक छात्रालय था। इस छात्रालयमें देश-विदेशके विद्यार्थी आकर रहते थे। कोई कातना सीखता था, कोई पींजना सीखता था और कोई करघे पर हाथसे खादी बुनना सीखता था। कुछ विद्यार्थी कारखानोंमें बढ़इगिरीका काम सीखते और चरखे वगैरा बनाते थे।

आश्रममें कई लड़के और कई लड़कियाँ रहती थीं। वे सभी उद्योग सीखते और साथ साथ पढ़ते-लिखते भी थे।

आश्रममें बड़ी बहनोंके लिए एक स्त्री-निवास था । वे रोज अपने निवासमें इकठ्ठा होतीं और प्रार्थना करतीं, कुछ देर लिखतीं-पढ़तीं और कातने-पींजने का काम भी करतीं । आश्रमका संयुक्त भोजनालय, जहाँ सभी आश्रमवासी मिलकर खाते थे, ये बहनें ही चलातीं थीं | वे बारी बारीसे रसोई-घरमें काम करतीं और कोठारका अनाज साफ करनेमें मदद पहुँचातीं।

आश्रममें नन्हें नन्हें बच्चोंका एक बालमंदिर भी चलता; लेकिन उसके लिए अलगसे कोई शिक्षक न रखा जाता। आश्रमवासिनी बहनें ही उस बालमंदिराका काम देखतीं ।

आश्रममें एक सुंदर गौशाला थी। गोशालामें बहुतेरी मोटी-ताजी गायें थीं। आश्रममें हमेशा गायके दूधका ही उपयोग होता था।

आश्रमका अपना एक छोटा-सा चर्मालय भी था। उसमें अपनी मौत मरे मवेशियोंका चमड़ा कमाया जाता, और उसके चप्पल वगैरा बनाये जाते । जो ढोर कत्ल किये जाते हैं, उनके चमड़ेको काममें लाना, उनके कत्लमें मदद पहुँचाना है। इसलिए आश्रमवासी इस अहिंसक चमड़ेके जूते और चप्पल वगैरा ही काममें लाते हैं।

आश्रमकी अपनी थोड़ी खेती-बाड़ी भी है। उसमें कुछ तो फलोके पेड़ लगाये गये हैं, कुछ साग-सब्जी होती है, और खेतोंमें कुछ जुवार व कपास वगैरा भी बोया जाता है।

इन सब कामोंमें आश्रमके भाई, बहन और बच्चे सभी पूरा-पूरा भाग लेते। वे बारी बारीसे कभी रसोईघरमें काम करते, कभी गोशालामें गोबर उठाने जाते, कभी पाखानोंकी सफाई करते, और कभी खेती-बाड़ीके काममें सहायक होते।

सुबहसे शाम तक गांधीजीका आश्रम मधुमक्खीके छत्तेकी तरह उद्योगसे गूँजा करता। गांधीजीने इसीलिए उसका नाम 'उद्योगमन्दिर' रख दिया, जो बहुत ही ठीक हुआ।

१६. नौकर

आम तौर पर लोग आजकल पानी भरने, बरतन मलने, झाड़ने-बुहारने, पीसने, रसोई बनाने, कपड़े धोने, कातने और पाखाना-सफाई वगैरा करनेसे जी चुराते हैं, क्योंकि उनके ख़यालमें ये सारे काम हलके हैं | फुरसत रहते हुए भी वे इन कामोंको हाथ नहीं लगाते, क्योंकि वे मानते हैं कि ये सब हलके लोगोंके करने लायक काम हैं। चुनाँचे वे इनके लिए नौकर रखते हैं, और उन नौकरोंको हलका समझकर उनके साथ खुद हलकेपनका सलूक करते हैं।

गांधीजी किसी कामको हलका नहीं समझते। आश्रम शुरू करनेसे पहले भी उनके ख़याल इसी तरहके थे। यह नहीं कि उन्होंने कभी अपने घरमें नौकर रखे ही न हों, पर नौकरोंके साथ नौकरका-सा सलूक उन्होंने कभी नहीं किया।

बचपनमें, जब वे बहुत छोटे थे,उनके घर रम्भा नामकी एक नौकरानी काम करती थी। गांधीजी आज भी उसे सगी माँकी तरह याद करते हैं। बचपनमें इसी रम्भाने गांधीजीको सिखाया था कि जब डर लगा करे, रामका नाम ले लिया करो; डर भाग खड़ा होगा। गांधीजी उसकी सीखको अभी तक भूले नहीं हैं।

बैरिस्टरी पास करनेके बाद गांधीजी कुछ दिन बम्बईमें अपने कुम्बेके साथ रहे थे। उस वक्त उन्होंने अपने यहाँ एक ब्राह्मण रसोइयेको नौकर रखा था। खुद विलायतसे लौटकर आये थे। बड़ी शानसे अंग्रेजी ठाट-बाटमें रहते थे। मगर नौकरको नौकर नहीं समझते थे। आधी रसोई महाराज बनाता, आधी खुद बनाते, साथमें रसोइयेको कुछ सिखाते भी जाते और उसके संग बराबरीसे बैठकर खाना खाते। नौकरके नाते उससे किसी तरहका भेदभाव न रखते।

दक्षिण अफ्रीकामें गांधीजी काफी कमाते थे। वहाँ उनका परिवार भी बहुत बड़ा था। फिर भी कपड़े धोने और पाखाना साफ करनेका काम गांधीजी और कस्तूरबा अपने हाथों करते

थे। घरमें महरों और मुहर्रिरोंकी कमी न थी; लेकिन वे सब घरके आदमी ही समझे जाते थे और उनके साथ वैसा ही सलूक भी होता था।

आश्रमवासी बननेके बाद तो नौकर न रखने और सारा काम खुद करनेका नियम ही बन गया। जिनका सारा जीवन ही सेवाके लिए है, उनके लिए नौकर क्या और मालिक क्या ?

१७. इस पार गंगा : उस पार जमुना

गोकुलके बारेमें कहा जाता है कि उसके इस पार गंगा और उस पार जमुना है, और दोनोंके बीचमें गोकुलकी अपनी सुंदर बस्ती है।

गांधीजीके आश्रमका भी यह हाल है। एक तरफ साबरमतीका जेलखाना है, और दूसरी तरफ दूधेश्वरका मन्दिर और मसान है।

गांधीजीने आश्रमके लिए जो जगह चुनी, वह सत्याग्रहियोंकी शानको बढ़ानेवाली थी। उन्हें न तो जेलका डर रहता है, न मौतका खौफ ! दोनों चीजें उन्हें एकसी प्यारी हैं, और दोनों उनकी पड़ोसिन हैं।

जेलकी तरफ इशारा करके गांधीजी आश्रमवालोंसे अकसर कहते : 'किसी दिन हमें भी वहाँ रहने जाना है। इसलिए जैसी कड़ी जिन्दगी जेलमें कैदियोंको बितानी पड़ती है, वैसी यहाँ बिताना सीख लो।'

दूधेश्वरको दिखाकर वे कहते : जहाँ हम रोज हवाखोरीको जाते हैं, वहाँ एक दिन हमेशाके लिए जानेमें डर कैसा ? हमारा फर्ज है कि हम देशके लिए मरनेको हमेशा तैयार रहें।'

भला, ऐसी जगहमें रहनेकी हिम्मत कौन कर सकता है ? वही, न जिसे देशसेवाका सबक सीखना हो, गांधीजीकी सोबतमें रहना पसन्द हो, और मेहनत-मशक्कतकी सीधी-सच्ची जिन्दगी बितानेकी लौ लगी हो।

१८. जिन्दा लाठियाँ

जब गांधीजी हवाखोरीको निकलते हैं, तो छोटे-बड़े कई बच्चे भी उनके साथ हो लेते हैं, और गांधीजीके साथ गपशप लड़ानेका मजा लूटते हैं।

मगर गांधीजीके साथ घूमने जानेवालोंको दरअसल जो मजा मिलता है, वह तो कुछ और ही है। चलते समय गांधीजीको लाठीका सहारा तो चाहिये न ? बस, ये बच्चे उनके अगलबगल खड़े हो जाते हैं, और गांधीजीके दोनों हाथोंको अपने कंधों पर ले लेते हैं।

यों दोनों तरफ दो जिन्दा लाठियाँ चलने लगती हैं, और बीचमें गांधीजी बातचीत करते हुए हवा खाते चलते हैं।

गांधीजी इन बच्चोंको अपनी जिन्दा लाठियाँ कहते हैं, और आश्रमके जिन बच्चोंको यों अरसे तक बापूकी लाठी बननेका मौका नहीं मिलता, वे मन-ही-मन मुरझाये रहते हैं

लेकिन यह न समझना कि बापूकी लाठी बनना कोई आसान काम है।

लोग शायद सोचते होंगे: गांधीजी बूढ़े हैं; धीमे-धीमे, डगमगाते हुए चलते होंगे ।' 'लेकिन बात ऐसी नहीं है। बापूको हमेशा चलते 'डबल मार्च' की चालसे चलनेकी आदत है। ऐसे समय अगर उनकी जिन्दा लाठियाँ नन्हीं हुईं, तो बेचारियोंको बरबस उनके साथ दौड़ना ही पड़ता है।

इस तरह हवाखोरीकी मस्तीमें और बातोंकि सपाटोंमें अकसर बच्चोंको - बाल-लाठियोंको – प्रार्थनाके वक्तका ख़याल भूल जाता है। लेकिन गांधीजी भला उसे क्योंकर भूलने लगे? वे जब देखते हैं कि समय होने आया, तो झट दौड़ना शुरू कर देते हैं। फिर तो उनके साथ उनकी लाठियोंको भी दौड़ना पड़ता है।

१९. पोशाकका इतिहास

एक जमाना था, जब गांधीजी कोट, पतलून और टोप पहनते थे। फिर उन्होंने कुर्ता और लुंगी पहनना शुरू किया। इसके बाद वे धोती, अँगरखा और साफा पहनने लगे। फिर खादीका पंचा, खादीका कुर्ता और खादीकी टोपी उनकी पोशाक बनी। बताओ, आजकल वे क्या पहनते हैं ?

खादीकी एक लँगोटी !

गांधीजीने समय समय पर अपनी पोशाकमें जितने फेरबदल किये, उनका इतिहास बड़ा दिलचस्प और जानने लायक है।

अपनी जवानीके दिनोंमें वे दक्षिण अफ्रीका रहने गये थे। वहाँ वे बैरिस्टरी करते और दूसरे सभी वकील-बैरिस्टरोंकी तरह परदेशी ढ़ंगकी पोशाक पहनते थे।

दक्षिण अफ्रीका जानेके बाद गांधीजीने देखा कि वहाँ हिन्दुस्तानियोंका बेहद अपमान किया जाता है। इस पर उन्होंने वहाँके हिन्दुस्तानियोंको सिखाने, पढ़ाने, संगठित करने और सत्याग्रहकी खूबियाँ समझानेका काम शुरू किया। उनकी सत्याग्रही सेनाके सैनिकोंमें ज्यादातर हिन्दुस्तानके गरीब मजदूर ही थे। फिर यह कैसे हो सकता था कि इन मजदूर सैनिकोंका सत्याग्रही सरदार इनसे ज्यादा अच्छी पोशाक पहनता, या ज्यादा अच्छा खाना खाता ? गांधीजी-जैसा सरदार इस भेदभावको क्योंकर बरदाश्त करता ? बस, उन्होंने उन्हीं दिनों निश्चय कर डाला कि उनके मजदूर भाई जैसे कपड़े पहनते हैं, वैसे ही वे भी पहनेंगे।

इन सत्याग्रही मजदूरोंमें ज्यादातर मजदूर मद्रासके थे, जो सिर्फ कुर्ता और लुंगी ही पहनते थे। चूँकि गांधीजी इन्हीं सत्याग्रहियोंके सरदार थे, इसलिए वे खुद भी लुंगी और कुर्ता पहनने लगे, और विदेशी कोट-पतलूनको धता बता दी।

जब दक्षिण अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंकी जीत हो गई, तो गांधीजीने सोचा : 'अब मुझे अपने देश जाकर भारतमाताकी सेवा करनी चाहिये।'

इसके साथ सवाल यह पैदा हुआ कि हिन्दुस्तानमें पोशाक कैसी पहनी जाय ? गांधीजी स्वभाव ही से सत्याग्रही हैं; इसलिये ऐसी छोटी छोटी बातोंमें भी वे सत्यकी छानबीन करके ही कदम बढ़ाते हैं। फिर यह कैसे हो सकता था कि वे किसी जैसी-तैसी पोशाकको पहनकर अपने देशमें वापस आते ? इस बार घरमें विलायती कोट-पतलून पहनकर आना उन्हें रुचा ही नहीं। लुंगी परदेशमें लुंगीवालोंके साथ जँचती थी, अपने देशमें वह क्योंकर जँचती ?

आखिर सोचते-विचारते उन्होंने तय किया कि अपनी जन्मभूमि काठियावाड़की पोशाक पहनकर ही वे हिन्दुस्तानकी भूमि पर पैर रखेंगे।

इस तरह जब गांधीजी अफ्रीकासे हिन्दुस्तान लौटे, तो धोती, कुर्ते और अँगरखेके साथ माथे पर काठियावाड़ी फेंटा बाँधते और कन्धे पर दुपट्टा रखते थे।

२०. खादी

यह उन दिनोंकी बात है, जब गांधीजीको न तो चरखा ही मिला था, और न उनके साथियोंमें कोई कातना ही जानता था। वह एक ऐसा जमाना था, जब शुद्ध खादीका नाम भी किसीको मालूम न था। ये सारी बातें तो बादमें पैदा हुईं। इससे पहले गांधीजी देशी मिलोके कपड़ेका ही उपयोग करते थे। बादमें उनके साथियोंमें से कुछने हाथ-करघे पर कपड़ा बुनना सीखा, और तबसे गांधीजी करघेका बुना हुआ मोटा कपड़ा पहनने लगे। लेकिन करघेके लिए भी सूत तो मिलका ही काम आता था। उन दिनों हाथ-कता सूत देता कौन ?

यों होते होते कई दिनों बाद बड़ी मुश्किलसे गांधीजीको श्रीमती गंगाबहन मजूमदार मिलीं, जिनकी मददसे उन्होंने चरखा पाया।

फिर तो वे और उनके कई साथी-संगी चरखा चलाना सीखे, और यों चरखे पर कता हुआ सूत बुना भी जाने लगा।

अब भला गांधीजी मिलके सूतका कपड़ा क्यों पहनने लगे ? उन्होंने तभीसे शुद्ध खादीके कपड़े पहनने शुरू कर दिये ! वे खादीके कपड़े पहनने तो लगे, पर पहनते पूरी पोशाक थे। खादीकी लम्बी धोती, खादीका कुर्ता, कुर्ते पर लम्बी बाँहोंवाला अँगरखा, सिर पर खादीका लम्बा फेंटा और कन्धे पर खादीका दुपट्टा – यही उन दिनोंकी उनकी पोशाक थी। इतने सारे कपड़े पहनकर घूमना-फिरना उन्हें अच्छा तो न लगता था, फिर भी महज सभ्यताके ख़यालसे वे उन कपड़ोंको लादे रहते थे।

उतनेमें एक घटना ऐसी घट गई कि गांधीजीको अपना तरीका बदल देना पड़ा। उन्होंने सोचा : ‘इस झूठी सभ्यताके खातिर मैं क्यों नाहक इतने कपड़े लादे फिरूँ ? इन सबकी ज़रूरत ही क्या है ?’ बस, इसी घटनाके कारण खादीकी टोपीका जन्म हुआ।

२१. खादीकी टोपी

अहमदाबादके मिल-मजदूरोंका मिल-मालिकोंसे झगड़ा हो गया। मजदूरोंने हड़ताल कर दी। अनसूयाबहन इन हड़तालियोंकी अगुआ बनीं। जहाँ अनसूयाबहन अगुआ हों, वहाँ गांधीजी न रहें, यह कैसे हो सकता था ?

करीब एक महीने तक झगड़ा चला। गांधीजी रोज मजदूरोंसे मिलते और रोज उन्हें अपनी बातें समझाते।

गरीब मज़दूरोंकी रोजी मारी जा रही थी। उन्हें पेटभर खानेको नहीं मिलता था। फिर भी वे उत्साहके साथ गांधीजीकी बातें सुनते आते थे, और अपनी हड़ताल पर चट्टानकी तरह कायम थे।

जैसे-जैसे दिन बीतते गये, गांधीजी मजदूरोंमें और मजदूर गांधीजीमें घुलते-मिलते गये। दोनोंमें जो फर्क दिखाई पड़ता था, वह खुद गांधीजीको ही अखरने लगा। उन्होंने सोचा : 'जब इन मजदूरोंके पास पहननेको पूरे साबित कपड़े तक नहीं हैं, तब मुझे क्या हक है कि मैं अपने तन पर इतने सारे कपड़े लादे फिरूँ ? मेरी इस लम्बी पगड़ीकी दस टोपियाँ बन सकती हैं, और दस आदमियोंके सिर ढँक सकती हैं।' बस, तभीसे गांधीजीने पगड़ी या फेंटा पहनना छोड़ दिया और टोपी पहनना शुरू कर दिया। उन्होंने अपनी धोतीका कपड़ा भी कम कर दिया। लम्बे अँगरखेको बेकार समझ छोड़ दिया, और आधी बाँहोंवाले छोटे कुर्तेसे काम चलाने लगे। इस तरह जब गांधीजीने पोशाकमें भी मजदूरोंका ढंग अपना लिया, और खुद मजदूर-से बन गये, तब कहीं उनकी सत्याग्रही आत्माको तसल्ली हुई।

२२. सफेद टोपी

जब गांधीजीने पहले-पहल सफेद टोपी पहननी शुरू की, तो लोगोंको बड़ा अचरज हुआ।

लोग कहने लगे: 'सफेद टोपी ? अजी, कहीं टोपी भी सफेद हुई है ? टोपी लाल हो सकती है, हरी हो सकती है, पीली या काली हो सकती है, मगर यह सफेद टोपी कैसी ? इसे टोपी कहेगा कौन ?'

जब गांधीजी सफेद टोपी पहनकर बाजारमें निकलते, तो लोग एक-दूसरेको दिखाकर हँसते हुए कहते : 'अजी देखो तो, गांधीजीने यह क्या पहना है ?' कुछ मनचले मजाक भी उड़ाते। कहते : 'यह टोपी है, या काशीके पण्डेका कनटोप ?'

लेकिन लोगोंके इस हँसी-मजाक पर ध्यान देनेकी फुरसत किसे थी ? गांधीजीने तो कभी इन बातोंका ख़याल ही नहीं किया। वे कहते : 'लोगोंको यह टोपी अच्छी नहीं लगती, भले न लगे। यह तो मानना ही पड़ेगा कि इससे खादीकी बचत होती है, और फिजूलखर्ची रुकती है।'

किसीने समझौता करानेकी गरजसे कहा: 'गांधीजी खादीकी टोपी पहनना पसंद करते हैं, भले करें। पर सफेद टोपीकी यह जिद क्यों ? क्या वे उसे रँगवाकर नहीं पहन सकते ? सफेद टोपी तो बहुत जल्द मैली हो जाती है।'

सच पूछो तो जितना मैल सफेद पर जमता है, उतना ही काली पर भी; लेकिन कालेमें काला इस तरह छिप जाता है कि काली चीज मैली नहीं दिखाई पड़ती।

इसलिए गांधीजीका एक ही जवाब रहा: 'भई, मैल छिपानेके लिए रंगीन टोपी पहननेसे बेहतर तो यह है कि मैली टोपी झट-झट धो डाली जाय। हमारी यह सफेद टोपी रोज घुल सकती है, और रोज नई रह सकती है। हम उस पर मैल जमने ही क्यों दें ?'

लोगोंको बात जँच गई, और सफेद टोपी जी गई !

२३. सफेद टोपी जिन्दाबाद !

सफेद टोपी लम्बी उमर लेकर जनमी थी। गांधीजीके समान अटल सत्याग्रही उसके जनक थे। फिर विरोधका पहाड़ भी टूट पड़े, तो उसकी बलासे ! वह क्यों मरने लगी ?

मरना तो दर किनार, वह दिन दूनी, रात चौगुनी फलने-फैलने लगी !

हँसी उड़ानेवाले रफ्ता-रफ्ता चुप हो गये। सफेद टोपी सबको जँच गई – पसन्द आ गई।

गरीबोंने सस्ती समझकर उसे अपनाया।

सफाई-पसन्द लोगोंने उसकी सफाईको पसन्द किया और पहनने लगे। रोज धोओ, रोज साफ ! कम खर्च, बाला नशीं।

कवियों और कलाकारोंने भी उसे अपनाया। उसकी सुन्दरताकी जी-भर सराहना की। पुरानी टोपियोंका काला-कलूटापन उनकी रसिक आँखोंको अखरने लगा।

स्वयंसेवकोंकी तो वह राष्ट्रीय पोशाक ही बन गई।

बच्चे सफेद टोपी पहनकर शानसे घूमने लगे। उसे पहनकर वे अपनेको भारतमाताका सिपाही समझने लगे।

यों होते-होते खादीकी सफेद टोपीका नाम उसके चलानेवालेके नाम पर मशहूर हो गया। अब वह गांधी टोपी कहलाने लगी।

२४. गांधी टोपी

सेठ – मुनीमजी, अबसे आप गांधी टोपी पहनकर न आया करिये।

मुनीम – सेठजी, आप तो ऐसी बात कह रहे हैं, जो मानी नहीं जा सकती।

सेठ – सो आप जानिये। लेकिन हमारे यहाँ गांधी टोपी नहीं चलेगी।

मुनीम – देखिये, मैं खादीके कपड़े पहननेका व्रत ले चुका हूँ। क्या व्रत तोड़ दूँ ?

सेठ – आप खादी पहनिये। खादी पहननेसे कौन रोकता है ? हम कहते यही हैं कि रंगाकर पहनिये; काली, नीली, जैसी आपको पसन्द हो।

मुनीम – मुझे सफेद पसन्द है, और मैं सफेद ही पहनूँ तो आपको कोई एतराज क्यों होना चाहिये ?

सेठ – नौकरी करनी हो तो जैसा कहते हैं, कीजिये। सफेद टोपी पहननेसे आप स्वयंसेवक दिखाई पड़ते हैं। अगर किसीको मालूम हो जाय कि हमारे यहाँ स्वयंसेवक नौकर है, तो हमारा बड़ा नुकसान हो सकता है।

मुनीम – साहब, यह सब मेरी समझमें नहीं आता। मैं आपकी नौकरी इमानदारीसे करता हूँ। आपको और चाहिये क्या ? मैं टोपी सफेद पहनूँ या काली, इसमें आपका नुकसान कैसा ?

सेठ – देखिये मुनीमजी, नाहक मेरा दिमाग न चाटिये। यह गांधी टोपी है। अगर हमारे यहाँ कोई गांधी टोपीवाला रहा, तो बरबस लोगोंका शक हम पर रहेगा।

मुनीम – अजी साहब, इसमें शककी क्या बात है ? गांधीजी तो हमारे देशके सबसे पवित्र पुरुष हैं। उनके-जैसी पाक हस्ती और है किसकी ?

सेठ – सो हो सकती है; लेकिन आप तो कलसे गांधी टोपी छोड़कर ही काम पर आइये।

मुनीम – टोपी तो मैं नहीं छोड़ सकूँगा।

सेठ – तो फिर नौकरी छोड़नी होगी।

मुनीम – जैसी आपकी मरजी।

सेठ – देखिये, फिर पछताइयेगा ! इस मनहूस टोपीके पीछे नौकरी क्यों खोते हैं ?

मुनीम – आपकी इस नेक सलाहके लिए मैं आपका बहुत ही अहसानमन्द हूँ। लेकिन पेटके खातिर मैं अपने देशका और गांधीजीका अपमान सहना नहीं चाहता। नमस्कार !

ऊपरकी बातचीत वैसे तो मनगढ़न्त है, लेकिन सरकारी दफ्तरोंमें, परदेशी व्यापारियोंकी पेढ़ियोंमें, और कुछ हिन्दुस्तानी व्यापारियोंकी पेढ़ियोंमें भी ऐसी घटनायें सचमुच घट चुकी हैं।

बहादुर नौकरोंने नौकरीको ठुकरा दिया, पर गांधी टोपीको न छोड़ा।

वैसे देखा जाय, तो गांधी टोपीकी क्रीमत सिर्फ चार आने हैं। लेकिन अब तो उसकी क़ीमत इतनी बढ़ चुकी है कि वह बेशक़ीमती ही नहीं, बेमोल हो गई है।

उसकी पहली खूबी यह है कि उसके चलानेवाले गांधीजी हैं।

दूसरी खूबी यह है कि वह पवित्र खादीकी बनती है।

तीसरी खूबी यह है कि वह हमेशा बगुलेके परकी तरह साफ रक्खी जा सकती है।

चौथी खूबी यह है कि वह खूबसूरत है।

पाँचवीं यह कि वह हलकी, सादी और सस्ती है।

छठी यह “कि वह हमारी राष्ट्रीय पोशाकका नमूना है।

सातवीं यह कि उसका नाम गांधीजीके नामके साथ जुड़ा हुआ है।

और बड़ीसे बड़ी खूबी यह है कि उसके लिए सैकड़ों देशभक्तोंने तरह-तरहकी कुर्बानियाँ की हैं।

भला, ऐसी अनमोल गांधी टोपीको पहनकर किसे अभिमान न होगा?

२५. सिर्फ कुर्ता

हमें गांधीजीका अहसान मानना चाहिये कि उन्होंने सिर्फ एक कुर्ता पहनकर घूमने-फिरनेका रास्ता हमारे लिये खोल दिया।

जानते हो, पहले क्या होता था ?

बाप रे बाप ! सबके नीचे बनियान, उस पर कमीज, कमीज पर जाकट और जाकट पर कोट।

इस सारे ठाठके साथ जब दुपहरकी गरमी पड़ती थी, तो मजा आ जाता था। सारा बदन अन्दरसे आलूकी तरह सीज जाता और पसीना बदबू मारने लगता। लेकिन कोई माईका लाल ऐसा न था, जो हिम्मत करके इन सबको ठुकरा देता और सीधी-सादी पोशाकमें घरसे बाहर निकलता।

अगर कोई बिना कोट पहने बाजारमें चंला आता, तो उस पर अँगुलियाँ उठतीं –उसकी पोशाक अधूरी मानी जाती। गरमी बरदाश्त हो, चाहे न हो, कोट तो पहनना ही चाहिये। बिना कोटके पूरी पोशाक कैसी ?

बिना कोटके स्कूलमें जाना तक मना था। कोई अन्दर घुसने न देता। लोग कहते : 'अधूरी पोशाक पहनकर पाठशालामें आना मना है।'

बिना कोटके कोर्टों और कचहरियोंमें कोई खड़ा न रहने देता। लोग कहते : 'ऐसे जंगली आदमियोंका यहाँ कोई काम नहीं।'

सब परेशान थे। सब तकलीफ पाते थे। पर जंगलियोंमें शुमार होनेकी हिम्मत कौन करे ?

आखिर सत्याग्रही गांधीजीने यह हिम्मत दिखाई और सबके पहले सिर्फ कुर्ता पहनकर निकलना शुरू किया।

लोग हँसी उड़ाने लगे। गांधीजी कहते : 'हँसनेवाले हँसा करें। दरअसल तो इस गरम देशमें इतने कपड़े लादकर फिरना ही जंगलीपन है। तिस पर हमारा यह देश इतना गरीब है ! गरीबोंके इस देशमें जरूरतसे ज्यादा कपड़े पहनना भी एक पाप है।

फिर तो सबमें हिम्मत आ गई। सब कोई सिर्फ कुर्ता पहनकर निकलने लगे। बड़े भी, बूढ़े भी, और बच्चे भी। बच्चे तो खुश-खुश हो गये !

खादीका कुर्ता और खादीकी टोपी हमारी राष्ट्रीय पोशाक बन गई।

२६. भाषाओंका ज्ञान

वैसे गांधीजी कई भाषायें जानते हैं। पर उन्होंने पण्डित बननेके ख़यालसे कभी कोई जबान नहीं सीखी। जो कुछ सीखा, सेवाके विचारसे सीखा।

गुजराती तो उनकी अपनी जबान है – मातृभाषा है।

माता-पिताके कहनेसे अंग्रेजी उन्होंने स्कूलमें सीखी; फिर विलायत गये, वहाँ सीखी। दक्षिण अक्रिकामें बरसों रहे, वहाँ वह पक्की हुई।

अफ्रीकामें उन्हें मुसलमान भाइयोंके बीच रहने और काम करनेका मौका मिला। उनकी सेवा करते-करते वे उर्दू बोलना और समझना सीख गये।

इसी तरह अफ्रीकामें उन्हें मद्रासी मजदूरोंके साथ कामकाज करना पड़ा। वे लोग बहुत बड़ी तादादमें सत्याग्रही बनकर गांधीजीके साथ हुए। उनकी सेवाके विचारसे गांधीजीने कामचलाऊ तामिल भी सीखी।

हिन्दुस्तानके कोने-कोनेमें अपना सन्देश पहुँचानेके ख़यालसे गांधीजीने कई बार सारे देशका दौरा किया। इन दौरोंमें उन्हें राष्ट्रभाषाके नाते हिन्दुस्तानीका महत्त्व पट गया। उन्होंने देखा कि किसी भी प्रान्तमें जाकर वे हिन्दुस्तानी जबानमें अपनी बात लोगोंको समझा सकते हैं – लोग हर जगह हिन्दुस्तानी समझ लेते हैं। पहले गांधीजीका हिन्दी-हिन्दुस्तानीका ज्ञान बहुत कच्चा था, लेकिन अब उन्होंने उस पर काफी काबू हासिल कर लिया है।

गांधीजी इन भाषाओंकों पढ़कर नहीं सीखे। रोज-रोजके अभ्याससे, अनुभव और तजरबेसे सीख गये। अब भी जब कभी मौका मिलता है, वै इनका अभ्यास बढ़ाने और इन्हें सुधारनेकी कोशिश जरूर करते हैं।

जब-जब लम्बी मुद्दतोंके लिए उन्हें जेलमें रहना पड़ा, उन्होंने तामिल और उर्दू सीखनेकी खास कोशिश की।

कोई यह नहीं कह सकता कि गांधीजी मराठी ठीक-ठीक जानते हैं; फिर भी एक बार दक्षिण अफ्रीकामें उन्होंने गोखलेजीका एक भाषण मराठीमें करवाया था, और खुद दुभाषिया बमकर उसका तरजुमा किया था। उसके बाद तो और अब सेवाग्राममें रहते हैं, इसलिए मराठीमें भी काफी तरक्की कर चुके हैं।

बचपनमें थोड़ी संस्कृत वे स्कूलमें सीखे थे। बादमें जेल जाने पर उन्होंने इस भाषाका वहाँ अच्छा अभ्यास बढ़ा लिया।

विलायतमें रहते हुए गांधीजीने यूरोपकी पुरानी भाषा लैटिनका और वहाँ की राष्ट्रभाषा जैसी फ्रेंच भाषाका भी कामचलाऊ ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

अपनी मातृभाषा गुजरातीका तो गांधीजीने बहुत ही विकास किया है। उनकी भाषा सीधी, सरल, आडम्बरहीन, तेजस्वी और भावोंसे भरी रहती है।

२७. खुराकके प्रयोग

खाने-पीनेके मामलेमें तरह-तरहके तजरबे करनेका शौक गांधीजीको बचपन ही से है। अपनी जिन्दमगीमें उन्होंने ऐसे अनगिनत प्रयोग किये हैं; अपने आप पर उन्हें आजमा कर देखा है; और कई दफा तो इसीकी वजहसे अपनी जानको भी खतरेमें डाला है।

उनका बड़ेसे बड़ा प्रयोग दूधका है। किसी भी चौपायेका दूध पीनेमें गांधीजी एक तरहका अधर्म और हिंसा महसूस करते हैं। वे सोचते हैं : भगवन्ने जों चीज दुधारू जानवरोंके बछड़ोंके लिए पैदा की है, उस पर अपना हक जमा लेना इन्सानके लिए बहुत बड़ा पाप है - पाप माना जाना चाहिये। वैसे देखा जाय तो दूधकी खुराकको भी हम एक तरहका मांसाहार ही कह सकते हैं। जब इस तरहके ख़याल मजबूत होते गये, तो गांधीजीने अपनी खुराकमें से दूधको हटा देनेका, दूध छोड़ देनेका, व्रत ले लिया।

कई सालों तक उन्होंने दूधको छुआ तक नहीं। इसी अरसेमें वे एक बार इतने सख्त बीमार हुए कि बचनेकी कोई उम्मीद न रही। डॉक्टरोंने कह दिया कि अगर गांधीजी दूध लेना शुरू करें, तो मुमकिन है बच जायूँ ! आखिर श्रीमती कस्तूरबाके समझाने और आग्रह करने पर गांधीजीने बकरीका दूध लेना कबूल किया, और अब तक वे बराबर बकरीका ही दूध लेते हैं !

दूधके बारेमें जो तजरबा उन्हें हुआ, उस परसे गांधीजी अब यह मानने लगे हैं कि बिना दूधके आदमीका काम चल नहीं सकता। लेकिन साथ ही उन्हें यह भी उम्मीद है कि किसी दिन कोई ऐसा वैज्ञानिक इस देशमें जन्मेगा, जो वनस्पतिसे दूधके-से गुणोंवाली खुराक तैयार करके उसे लोगोंके लिए सुलभ बना देगा।

नमकके बारेमें गांधीजीका यह ख़याल रहा कि इन्सानके लिए वह ज़रूरी नहीं है। और इसीलिए कई साल तक उन्होंने नमक नहीं खाया। लेकिन बादमें उन्हें यकीन हो गया कि आदमीकी खुराकमें इस चीजकी भी ज़रूरत है, इसलिए फिर नमक खाना शुरू कर दिया।

गांधीजीका ख़याल है कि इन्सानकी पूरी और सच्ची खुराक फल ही है। मनुष्यके शरीरकी बनावट, उसके हाथ-पैरोंकी गढ़न, उसके दाँत, उसका पेट, इन सबकी तासीरको देखते हुए साफ मालूम होता है कि भगवानने मनुष्यको फल खानेके लिए ही पैदा किया है। हम देखते हैं कि बन्दर, जो सूरत-शकलमें आदमीसे बहुत-कुछ मिलता-जुलता है, फल खाकर ही जीता है; इससे भी हमारी बातको बल मिलता है।

लेकिन जैसी गरीबी आज इस देशमें है, उसमें यहाँके लोग फल कैसे खा सकते हैं ? शायद इसी ख़यालसे गांधीजीने मूँगफली, खजूर और केले जैसे कुछ सस्तेसे सस्ते फल खोज निकाले, और खुद कई सालों तक इन्हीं फलों पर रहे।

खाना पकानेके बारेमें भी गांधीजीका ख़याल है कि जिन तरीकोंसे वह आजकल पकाया जाता है, वे ठीक नहीं हैं। उनके विचारमें दरअसल तो खानेकी चीजोंको आग पर चढ़ाकर पकानेकी कोई ज़रूरत ही नहीं। जो फल सूरजकी गरमीमें डालने पर पक जाते हैं, वे पूरी खुराकका काम दे सकते हैं; उन्हें दुबारा आग पर पकाना उनको बेकस बनाना है।

एक बार गांधीजीको यह ख़याल सूझा कि अगर अनाजको भिगोकर अँकुवा लिया जाय और उसको उसी रूपमें खाया जाय, तो औरतोंको चूल्हा फूँकनेसे छुट्टी मिल सकेगी और खर्चमें भी काफी बचत हो जायेगी। भिगोया हुआ अनाज खूब चबा-चबा कर खाना पढ़ता है, इसलिए पकाये हुऐके मुकाबलेमें कम खाया जाता है।

अगर यह चीज सध जाय, तो देशके गरीबोंके लिए एक अच्छा वरदान बन सकती है। उन दिनों गांधीजीकी तंदुरुस्ती इस लायक नहीं थी कि वे ऐसा खतरनाक तज़रबा अपने ऊपर करते; लेकिन उन्होंने किया। कुछ महीनोंके अनुभवके बाद जब यह भरोसा हो गया कि ऐसी खुराकको इन्सान आम तौर पर हमेशा हजम नहीं कर सकता, तो उन्होंने इस चीजको भी छोड़ दिया।

लोग धानको कूट-खाँड कर चावलोंको इतना सफेद कर लेते हैं कि वे बिलकुल बेकस हो जाते हैं, और फिर बड़े चावसे उन्हीं निकम्मे चावलोंको खाते हैं। गेहूँ वगैरा नाजके चोकरको

फेंककर महीन मैदे जैसा आटा खानेमें शान समझते हैं। सच पूछा जाय तो भूसी और चोकरममें नाजकी असली ताकत रहती है; उसको फेंक देनेका मतलब है, रसको थूककर गुठली चबाते बैठना। जबसे गांधीजीको इस सचाईका पता चला, वे बराबर यह कोशिश कर रहे हैं कि लोग हाथ-कुटे चावल और चोकरवाला हाथ-पिसा मोटा आटा खायें।

अब तो गांधीजीकी तंदुरुस्ती काँचके कंगनकी तरह कमजोर पड़ गई है; फिर भी खुराकके मामलोंमें उनकी दिलचस्पी कायम है, और छोटे-मोटे प्रयोग तो आज भी हररोज चलते ही रहते हैं।

२८. कुदरती इलाज

बीमारीका नाम सुनते ही लोग अकसर हावरे-बावरे हो जाते हैं; हकीमों या डॉक्टरोंके घर दौड़े जाते हैं; और उन्हींको अपना तारनहार समझ लेते हैं। भगवान्‌की दी हुई इस देहको तंदुरुस्त रखने या इस अनोखे यंत्रकी बनावटको समझ लेनेका हमारा अपना भी कुछ जिम्मा है, इस बातको हम आज भूल-से गये हैं। इसलिए बीमारी भोगकर उठनेके बाद जब चंगे हो जाते हैं, तो फिर मनमाना खाने-पीने लगते हैं, और मौज-शौक या भोगविलासमें डूबकर अपनी जिम्मेदारीको भूल जाते हैं।

इस बारेमें गांधीजीके विचार खास तौरसे समझने लायक हैं।

पहली बात तो यह है कि बीमारीमें घबराना न चाहिये। जो इलाज हो सकता है, वह जरूर करना चाहिये; लेकिन डॉक्टरको भगवान् समझ लेनेकी भूल न करनी चाहिये।

दूसरे, जितनी बीमारियाँ हैं, अक्सर खाने-पीनेकी गड़बड़से ही पैदा होती हैं, इसलिए भरसक ऐसी गड़बड़ न होने देनी चाहिये।

इतने पर भी अगर बीमारी आ ही पड़े, तो अपने दिलको इस ख़यालसे समझाना चाहिये कि बहुतेरी बीमारियाँ इसलिए भी आती हैं कि वे देहरूपी मशीनके कल-पुर्जोंको बेजा बोझसे हलका कर दें, और उसे फिरसे अच्छी तरह काम करने लायक बना दें। इसलिए बीमार पड़ते ही दवाइयोंकी बोतलों पर बोतलें खाली न करनी चाहियें, बल्कि बीमारीको अपना काम करनेका मौका देना चाहिये। इससे कुछ ही दिनोंमे रोग अपने आप मिट जाता है, और शरीरके दोषोंको भी मिटानेका मौका मिलता है।

बीमारीमें दवाईयोंका सहारा लेनेके बदले कुदरती इलाज करना गांधीजीको ज्यादा पसंद है। गीली मिट्टीकी पट्टी रखनेसे और पानीमें कमर तक बैठने (कटिस्नान) से बुरेसे बुरा, जहरीला बुखार और दूसरी बीमारियाँ मिट जाती हैं। गांधीजी बड़े शौकसे इनका प्रयोग करते हैं।

अपने आप पर और अपने प्यारे-से-प्यारे स्वजनों पर भी उन्होंने कई बार ये प्रयोग किये हैं; और इनमें वे कामयाब भी हुए हैं।

सूरजकी रोशनीमें रहना और खुले आसमानके नीचे सोना भी गांधीजीके कुदरती इलाजोंमें शुमार है।

लेकिन उनका बड़ेसे बड़ा इलाज उपवास या फाकेका ही है। उन्होंने कई भाईयों और बहनोंको बढ़ावा दे-देकर अपनी देखरेखमें उपवास करनेको राजी किया है, और इस तरह उनको तंदुरुस्त बनाया है।

जो गाँधीजीके पास रहते हैं, उन्हें अकसर यह देखनेको मिलता है कि कई बीमारियाँ तो सिर्फ खुराकमें थोड़ा हेरफेर करनेसे ही दूर हो जाती हैं।

यों, सौमें अस्सी बीमारियाँ तो कुदरती इलाजसे ही दूर हो जाती हैं। इसलिए इन बीमारियोंसे घबराकर सीधे डॉक्टरकी शरणमें जाना मनुष्यको शोभा नहीं देता |

फिर भी गांधीजीका ख़याल है कि चन्द जहरीली या खतरनाक बीमारियोंके लिए कुछ अचूक दवायें और होशियार सर्जनोंकी मदद, उनकी चीरफाड़, जरूरी है। खुद गांधीजीको भी इस तरहके कई तजरबोंमें से गुजरना पड़ा है।

मगर किसी भी हालतमें बीमारीको देखकर बेकल हो जाना तो इन्सानकी शानके खिलाफ ही है। गांधीजीके पुत्र श्री रामदासभाइने और श्रीमती कस्तूरबाने अपनी लम्बी और भयावनी बीमारीके दिनोंमें भी मांसका शोरबा लेनेसे इनकार कर दिया था। डॉक्टरोंने बहुतेरा कहा, पर दोनोंने हँसते-हँसते मर जाना पसंद किया, मगर मांस खानेसे कतई इनकार कर दिया ! उनकी इस दृढ़ताको देखकर गांधीजीकी आत्मा बहुत पुलकित हुई, और उन्होंने अपने प्यारे बीमारोंको उनकी बहादुरीके लिए जी-जानसे असीसा।

बीमारीके दिनोंमें घरवाले बाहर रहकर जितनी दौड़धूप मचाते हैं, उसके मुकाबले मरीजकी जितनी प्यारभरी सेवा होनी चाहिये, नहीं होती। गांधीजीको बीमारोंकी सेवाका

बड़ा शौक है। देशका बड़ेसे बड़ा काम भी उनको अकसर इसके आगे फीका जँचता है। अपनी ताकत भर वे बीमारोंकी सेवाके अवसरको हाथसे जाने नहीं देते। इसलिए जो भाईबहन बीमार पड़कर उनकी निगरानीमें अच्छे होते हैं, वे अपनी तकदीरके सराहे नहीं रहते। उन्हें अपना वह सौभाग्य कभी नहीं भूलता।

२९. दरिद्रनारायणके दर्शन

हिन्दुस्तानका दौरा करते करते एक बार गांधीजी उड़ीसा पहुँचे।

उड़ीसाकी गरीबी इस देशमें एक कहावत बन गई है। सारी दुनियामें सबसे गरीब देश हमारा हिन्दुस्तान है, और उड़ीसा इसी हिन्दुस्तानका एक बहुत ही गरीब सूबा है। वहाँ आदमी नहीं रहते, जीवित नरकंकाल रहते हैं - हड्डियोंके जिन्दा ढाँचे ! अकाल कभी उनका पीछा नहीं छोड़ता। लोगोंको शायद ही कभी दो जून भरपेट खानेको मिलता है। ऐसी हालतमें तन ढँकनेको कपड़े कहाँसे मिलें ?

उड़ीसाकी गरीबीकी ये बातें गांधीजीने सुनी तो बहुत थीं, मगर उस गरीबीको अपनी आँखों पहली बार इसी दौरेमें देखा।

गांधीजी गरीब उड़ीसाके गाँवोंमें घूमे। गाँव क्या थे, खँडहरोंकी नुमाइश थी ! बीच बीचमें टूटी-फूटी झोंपडियाँ भी मिलती थीं, जिनमें भूख और प्याससे बेदम मर्द, औरत और बच्चे तड़पते पाये जाते थे। औरतोंके बदन पर फटे-पुराने चिथड़े लिपटे थे। इन चिथड़ोंकी यह बिसात न थी कि उनके तनको पूरी तरह ढँके रहें ! सिर्फ कमरका हिस्सा जैसा-तैसा ढँका मिलता था। बाकीके तनको ढँकनेका, लाजको छिपानेका, कोई सामान न था।

इस दृश्योंको देखकर गांधीजी बहुत ही दुःखी हुए।

‘हे भगवन् ! मेरे देशकी ऐसी घोर गरीबी ! क्या इस गरीबीको मिटानेके लिए मैं कुछ नहीं कर सकता ?

उस दिन मानो गांधीजीने दरिद्रनारायणके सच्चे दर्शन किये !

हिन्दुस्तानके दूसरे सब सूबोंके मुकाबले उड़ीसाके लिए गांधीजीके दिलमें बड़ा दर्द है। उनकी करुणा पर उड़ीसाका बहुत बड़ा अधिकार है !

३०. लँगोटी

चम्पारनमें किसानोंको निलहे गोरोंकी गुलामीसे छुड़ाकर गांधीजी वहीं गाँवोंमें रहने और गाँववालोंकी सेवा करने लगे।

एक दिन किसी गाँवमें उन्होंने कुछ औरतोंको बहुत ही गन्दी हालतमें देखा। गांधीजीने कस्तूरबासे कहा कि वे जायें और उन बहनोंको रोज नहाना और धुले हुए कपड़े पहनना सिखायें।

बा गईं। उन्होंने उन बहनोंसे बातचीत की। उन्हें समझाया : 'बहनो, आपको कपड़े रोज धोने चाहियें। धोने-धानेमें इतनी सुस्ती न करनी चाहिये।'

जो बहनें गन्दे कपडे पहने थीं, उन्होंने कस्तूरबाको एक नजर देखा। फिर उनमें से एक बहनने कहा : 'माताजी, आप अंदर चलिये, और इस मढ़ैयाको एक निगाह देख लीजिये।'

बा उस बहनके साथ अंदर गईं। झोंपड़ीवालीने कहा : 'माताजी, आप इसे अच्छी तरह देख लीजिये। क्या इसमें कहीं कपड़ोंसे भरी कोई सन्दूक या अलमारी नजर आती है ? कुछ है ही नहीं ! बदन पर पड़ी हुई यह साड़ी ही सब कुछ है। अब बताइये, इसे कब धोऊँ ? कब बदलूं ? कैसे बदलूं ? आप महात्माजीसे कहिये, वे मेरे लिए एकाध साड़ी और भिजवा दें ! फिर मैं रोज नहाऊँगी, रोज धुला हुआ पहनूँगी और साफ-सुथरी रहूँगी।'

गांधीजीने देशकी गरीबीको कई बार अपनी आँखों देखा था; लेकिन जब बाके मुँहसे यह दर्दभरा किस्सा सुना, तो उन्हें उस गरीबीकी गहराईका ठीक ठीक अन्दाज हो आया।

यह गरीबी कैसे दूर हो ? उस झोंपड़ीवालोंको एक साड़ी और दिला देनेसे ही सवाल हल नहीं हो जाता। उसके जैसी तो देशमें अनगिनत हैं - लाखों, करोड़ों !

इन सब मुसीबतोंका एक ही इलाज है - स्वराज्य : अपना राज्य। जब गांधीजी स्वराज्यके लिए सरकारसे जूझते हैं, तो उनके दिलमें इन्हीं करोड़ों झोंपड़ीवाली बहनोंकी याद बनी रहती है।

एक अरसा हुआ, गांधीजीने ऐसा ही एक जंग सरकारके साथ छेड़ा था। उसका खूब रंग जमा। लोगोंके जोशका ठिकाना न रहा। इसी दरमियान एक दिन एक खास घटना घट गई। सरकारने गांधीजीके परम मित्र और साथी मौलाना महम्मदअलीको गिरफ्तार कर लिया।

आन-बानके इस मौके पर गांधीजीको उन गरीब और गंदगीमें रहनेवाली बहनोंकी याद फिर ताजा हो गई ! उन्होंने उसी दम यह प्रतिज्ञा की - व्रत लिया : 'जबतक इस देशमें स्वराज्यका सूरज नहीं उगता और मेरी भारतमाताकी देह पूरी तरह कपड़ोंसे नहीं ढैंकती, मैं अपनी देह पर तीन तीन कपड़े न लादूँगा। लाज ढँकनेको एक लँगोटीभर मेरे लिए काफी है।

और तबसे सिर्फ लँगोटी ही पहनते हैं।

३१. रेल-घर : रेल-आश्रम

बड़ौदाके गायकवाड़ोंके झण्डे पर जीन-घर, जीन-तख्त लिखा रहता है। पुराने जमानेमें मराठा सरदारोंको इस बातका बड़ा अभिमान था कि उनके घोड़ों पर रातदिन काठी कसी रहती है।

यही हाल गांधीजीका रहा है। उनका घर, उनका आश्रम, जो कुछ कहो, रेलगाड़ीके तीसरे दर्जेका डब्बा है। देशके इस कोनेसे उस कोने तक अपना सन्देश सुनानेके लिए उन्हें बरसों लगातार घूमना पड़ा है। महीनों सफरमें रहना पड़ा है, और इस हद तक रहना पड़ा है कि वे ज्यादा रेलमें रहे या आश्रममें, यह कहना मुश्किल है। ऐसी हालतमें रेलगाड़ीके डब्बेको ही उनका घर या आश्रम कहा जाय तो क्या बुराई है ?

और गांधीजी भी गाड़ीके डब्बेको अपना घर समझते हैं। उस पर सवार होकर घर ही की तरह सारा काम करते हैं। उसमें बैठकर वे चरखा चलाते हैं। सुबह-शामकी प्रार्थना करते हैं। पुस्तकें पढ़ते, चिट्ठी-पत्री लिखते और मिलने आनेवालोंसे मिलते-बोलते हैं। गांधीजी हमेशा तीसरे दर्जेमें सफर करते हैं। बीमारी या कमजोरीकी वजहसे जब कभी उन्हें ऊँचे दर्जेमें सफर करना पड़ता, उनका दिल बहुत दुःखी रहा करता। मनमें रह-रहकर एक ख़याल आता, जो उन्हें बेचैन बना जाता : 'में अपनेको गरीबोंका सेवक मानता हूँ। वे तीसरे दर्जेकी परेशानियाँ उठाते हैं, और मैं उनसे अलग ऊँचे दर्जेके गद्दों पर आकर बैठता हूँ। क्या यह उचित है ? मुनासिब है ?'

हमारे देशमें तीसरे दर्जेके मुसाफिरोंको जो मुसीबतें उठानी पड़ती हैं, वे दुनियासे छिपी नहीं। लोगोंके साथ खुद भी उन्हीं मुसीबतोंका सामना करके गांधीजी खुश होते हैं। जब वे 'महात्मा' नहीं बने थे, और इतने मशहूर भी नहीं थे, तब ऐसी परेशानियाँ उन्होंने खूब उठाई थीं, और बड़े शौकसे उठाई थीं। अकसर उन्हें मुसाफिरोंकी भीड़के बीच खड़ा रह जाना पड़ता; घण्टों खड़े-खड़े सफर करना पड़ता; कभी-कभी धक्के भी खाने पड़ते। ऐसी हालतमें सोने या काम करनेकी सहूलियत तो उन्हें कौन देने लगा ?

उन दिनों देशके बड़े-बड़े नेता भी आम रिआयासे दूर दूर रहते और गरीबों या मैले-कुचैले लोगोंके साथ मिलनेमें शरम-सी महसूस करते। बड़े-बड़े सरकारी अफसरोंकी तरह वे भी रेलके पहले या दूसरे दर्जेमें ही सफर करते। शायद इसीमें वे अपनी शान भी समझते थे। ऐसे समय अकेले गांधीजीका तीसरे दर्जेमें सफर करना एक अचरजकी बात थी। गांधीजी बैरिस्टर थे। दक्षिण अफ्रीकामें रह चुके थे और देशके नेता माने जाते थे।

एक बार गांधीजी कलकत्तेमें स्वर्गीय श्री गोखलेजीके घर ठहरे थे। जब बिदा होने लगे, तो गोखलेजी उन्हें स्टेशन तक पहुँचाने चले। गांधीजीने कहा: 'आप क्यों तकलीफ करते हैं ? 'रहिये, मैं चला जाऊँगा।' गोखलेजी न माने। उन्होंने जवाब दिया: 'अगर आप औरोंकी तरह ऊँचे दर्जेमें सफर करते, तो मैं घर ही रहता। लेकिन आप तो तीसरे दर्जेमें बैठनेवाले हैं; इसलिए मैं समझता हूँ, मुझे आपके साथ स्टेशन चलना ही चाहिये।'

उस जमानेमें गांधीजीकी ऐसी कद्र करनेवाले गोखलेजी जैसे कुछ इने-गिने लोग ही होते थे। आम तौर पर तो मजाक उड़ानेवालोंकी तादाद ही ज्यादा थी।

यों तीसरे दर्जेकी मुसीबतें उठाते-उठाते गांधीजीको अपने देशकी दीन-हीन जनताका खूब अच्छा परिचय हो गया। उसे नजदीकसे देखने, उसकी कमजोरियों, खूबियों, खासियतों और आदतोंको समझने, उसकी रग-रगसे वाकिफ होनेका उन्हें बड़ा अच्छा मौका मिला। अपने देशवासियोंकी नब्जको जितना गांधीजी पहचान पाये, उतना शायद ही कोई दूसरा नेता पहचान सका हो। इसलिए आज वे देशके सच्चे हकीम बन सके हैं, और उन्होंने जो नुस्खा दिया है, वह इस बीमार मुल्कके लिए मुफीद साबित हुआ है। यही वजह है कि आज छोटेसे लेकर बड़े तक सभी कोई गांधीजीकी बहुत गहरी इज्जत और श्रद्धाकी नजरसे देखते हैं।

३२. जेल-महल

जेलखानेको गांधीजी सिर्फ जेलखाना नहीं कहते, वे उसे जेल-महल या जेल-मंदिर कहते हैं।

जो जेलखानेसे डरते हैं, वे तो जेलखानेका नाम सुनते ही काँप उठते हैं। ऊँची-ऊँची दीवारें, बड़े-बड़े दरवाजे, काले-काले भयानक पहेरेदार, हथकड़ियों और बेड़ियोंकी झनकार ! तिस पर राक्षस-जैसी बड़ी बड़ी चक्कियाँ चलाना, बैल बनकर चड़सका पानी खींचना और कोल्हूमें बैलकी तरह जुतना। इनमें जरा कहीं कसूर हो गया, चूक हो गई, तो दारोगाके डंडेसे पिटना।

यह है जेलखानेकी तसवीर ! इन जेलखानोंमें एक दफा बन्द हो जानेके बाद फिर न तो बाहरकी दुनियाकी कोई चीज देखनेको मिलती है, न बाहरका कुछ सुनाई पड़ता है।

बड़े-बड़े चोर और लुटेरे भी कैदखानेके नामसे काँप उठते हैं।

लेकिन गांधीजीको वह जरा भी डरावना नहीं मालूम होता। वे उसे महल समझते हैं। मन्दिर कहकर उसकी महिमा बढ़ाते हैं। वे कई दफा इस महलके मेहमान रह चुके हैं और देशके सैकड़ों-हजारों सत्याग्रहियोंके लिए इस महलके दरवाजे उन्होंने खुले छुड़वा दिये हैं। लोग निधड़क अन्दर चले जाते हैं, और हँसते-हँसते वापस लौट आते हैं।

जो देशकी सेवाके लिए जेल जाते हैं, वे भला जेलसे डरें क्यों ? उन्हें तो जेलखानेमें खुशी होती है।

जेलमें एक बार दाखिल होनेके बाद फिर इन्सानको कोई फिकर ही नहीं रह जाती। खानेका वक्त हुआ, खाना तैयार; पहननेको कपड़े चाहियें, कपड़े तैयार; दारोगा चौबीसों घण्टे आपकी खिदमतमें तैयार ! हिफाजतके लिए पहरेदार हाजिर ! सन्तरी रात और दिन संगीन लिये खड़ा पहरा देनेको हाजिर !

दिनमें खूब मेहनत करनी पड़ती है; रातमें खर्राटेकी मीठी नींद आती है।

ऐसा सुख तो राजाको अपने राजमहलमें भी नसीब नहीं होता। उस बेचारेको मारे फिकरके न खाना अच्छा लगता है, और न रात वह सुखकी नींद सो पाता है।

जब गांधीजी दक्षिण आफ्रीकामें थे, तो वे वहाँके जेलखानोंके भी मेहमान रह चुके थे। हिन्दुस्तान आनेके बाद यहाँ भी वे कई बार जेल हो आये हैं। कभी साबरमतीके जेलखानेको महल बनाकर रहे, तो कभी पूनाके पास यरवदाको मन्दिर मानकर रहे।

जेलवाले बेचारे उन्हें जेलमें रखते शरमाते हैं। मगर करें क्या, हुकुमके चाकर जो ठहरे !

३३. तीन प्रतिज्ञायें

मोहनदास अब बड़े हो चुके थे। मैट्रिक पास कर चुके थे ।

मावजी दवेने कहा : 'मोहनदासको विलायत भेज दो। वह बैरिस्टर बनकर आयेगा, और अपने बापकी जगह सँभालेगा।'

पर विलायत जाना आसान न था। पिताजी राजके दीवान तो रह चुके थे, लेकिन पैसा कुछ छोड़ नहीं गये थे। राजकी तरफसे मदद पानेकी कोशिश की, मगर उसमें कामयाबी न मिली। बड़े भाई दिलके फैयाज थे। उन्होंने किसी भी तरह रुपयोंका बन्दोबस्त करनेका बीड़ा उठाया।

लेकिन विलायत जानेमें एक और भी रुकावट थी। उन दिनों समुद्रयात्रा करनेवालोंका धर्म नष्ट हो जाता था ! जात-बिरादरीवाले ऐसोंको अपने साथ बैठाते नहीं थे। यह एक बड़ा बैंडा सवाल था।

माता पुतलीबाईने कहा : ‘नहीं, मेरा मोहन विलायत नहीं जायगा। विलायत जानेसे जात जाती है। शराब पीने, मांस खाने और कुचाल चलनेका डर रहता है। विलायत जाना अपना काम नहीं।'

इस पर जान-पहचानके एक साधुने रास्ता सुझाते हुए कहा : 'माई, अगर मोहन प्रतिज्ञा कर ले और वहाँ जाकर अपनी मरजादसे रहे, तो क्या हर्ज है ?’

माताजीने कहा : ‘नहीं, फिर तो कोई हर्ज नहीं रहता।'

साधुने मोहनदाससे कहा : 'मोहन बोलो, माताजीके सामने तीन प्रतिज्ञायें लेनी होंगी। लोगे?’

‘कैसी प्रतिज्ञायें ?’

‘पहली, शराब नहीं पीओगे। दूसरी, मांस नहीं खाओगे। तीसरी, पराई औरतको माँ-बहन समझोगे। बोलो, मंजूर हैं ये तीन बातें ?’

'जी हाँ, मंजूर हैं, दिलसे मंजूर हैं।'

'तो फिर आ जाओ सामने, और माँके चरण छूकर कहो।'

गांधीजीने माताजीके चरणोंमें झुकते हुए कहा : 'माताजी, मैं शराब नहीं पीऊँगा, मांस नहीं खाऊँगा, पराई स्त्रीको माँ-बहनके समान समझूँगा।'

गांधीजीके जीवनमें प्रतिज्ञाओं या व्रतोंका बड़ा महत्त्व रहा है। वे बचपनसे इनमें मानते आये हैं। उनका विश्वास है कि कमजोरीकी घड़ियोंमें ये प्रतिज्ञायें ही मनुष्यको गिरनेसे बचाती हैं, और उसे मुकामसे हटने नहीं देतीं।

कहा जो है :

चन्द्र टरै, सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार।
पै दृढ़ श्री हरिचन्द्र कौ, टैरै न सत्य विचार॥

३४. ‘कुली’ बैरिस्टर

गांधीजी विलायत गये। बैरिस्टर बने। वापस हिन्दुस्तान आये और हिन्दुस्तानसे धन कमाने दक्षिण अफ्रीका गये। गांधीजीको अपनी जान-पहचानके एक मेमन व्यापारीके यहाँ काम मिला, और वे उस व्यापारीके नौकर बनकर वहाँ पहुँचे।

वह एक बिलकुल अनजान देश था। गांधीजी वहाँ धन कमाने गये थे। लेकिन दरअसल जो चीज उन्होंने वहाँ कमाई, उसका तो शायद किसीने सपना भी नहीं देखा था। वह एक अजीब चीज थी, और अजीब ढंगसे कमाई गई थी।

अफ्रीकाकी जमीन पर कदम रखते ही न जाने क्यों वहाँकी आबोहवामें गांधीजीका दम घुटने-सा लगा। वहाँ कदम-कदम पर हिन्दुस्तानियोंको बेइज्जत होना पड़ता था। इसमें छोटे-बड़े या अमीर-गरीबका कोई भेद न था।

बहुतेरे हिन्दुस्तानी उस मुल्कमें मजदूर या कुलीके नाते गये थे, इसलिए वहाँके गोरे लोग उनसे नफरत करते और उन्हें 'कुली' कहते थे। वहाँ जाकर हिन्दुस्तानी व्यापारी ‘कुली व्यापारी', हिन्दुस्तानी वकील 'कुली वकील’ और हिन्दुस्तानी बैरिस्टर 'कुली बैरिस्टर' कहलाता था। गांधीजी भी 'कुली बैरिस्टर’ कहलाये।

वहाँके गोरे हिन्दुस्तानियोंको अपनेसे हलका मानते और उनसे मिलना-जुलना अपनी शानके खिलाफ समझते थे। वे हिन्दुस्तानियोंको अपने साथ उठने-बैठने भी न देते थे। विक्टोरियामें, ट्राममें, रेलगाड़ीमें और होटलोंमें, कहीं कोई हिन्दुस्तानी उनके साथ बैठ नहीं सकता था। किसी हिन्दुस्तानी 'कुली’ को अपने साथ रास्तेमें पैदल चलते देखकर भी वे आग-भभूका हो जाते थे। जहाँ इतनी नफरत थी, वहाँ हिन्दुस्तानियोंको किसी उत्सव या जलसेमें बुलानेकी या उनकी आवभगत करनेकी तो बात ही क्या ?

पढ़े-लिखे और धनवान हिन्दुस्तानी भी इन अपमानोंको सहनेके आदी हो चुके थे। परदेशमें मान-अपमानका ख़याल न कर चुपचाप धन कमाने और देशमें जाकर इज्जतदार कहलानेका रास्ता सब अख्तियार कर चुके थे।

लेकिन गांधीजी इसे बरदाश्त न कर सके। जाते ही पग-पग पर उनका अपमान होने लगा। दूसरे हिन्दुस्तानियोंकी तरह वे इन अपमानोंको सह न सके। उन्होंने विरोध शुरू किया, और सर उठाकर, सीना तानकर चलने लगे। बदलेमें उनको गालियाँ, धक्के और लातें मिलीं । गांधीजीने गालीका जवाब गालीसे, धक्केका धक्केसे और लातका लातसे देना मुनासिब न समझा। वे अपमानोंसे डरे नहीं, और डरानेवालोंके सामने झुके नहीं।

एक दिन बैरिस्टर गांधी अपने किसी मित्रके साथ डरबन गये। डरबन आफ्रीकाका एक शहर है। मित्रने उन्हें वहाँकी अदालत दिखाई।

उन दिनों गांधीजी निहायत टीमटामसे रहते और बड़े शौकसे अंग्रेजी पोशाक पहनते थे; लेकिन माथे पर तब भी वे हिन्दुस्तानी पगड़ी ही रखते थे। डरबनकी अदालतमें भी वे उस दिन वैसी ही पगड़ी पहनकर गये और वकीलोंके साथ बैठे।

जज साहबको इस नई सूरतके रंगढंग पर अचरज हुआ। उन्होंने घूरकर गांधीजीको देखा और सोचा: ‘यह कुली बैरिस्टर माथे पर पगड़ी पहने बैठा है, और अदालतका अपमान कर रहा है।”

कुछ देर तक घूरनेके बाद उन्होंने गांधीजीसे कहा : ‘अपनी पगड़ी उतार दीजिये।'

गांधीजी इस अपमानको सह न सके। तिलमिला उठे। उन्होंने सोचा : 'पगड़ी उतारनेसे बेहतर है, सिर उतारकर दे देना।'

गांधीजीने पगड़ी उतारनेसे इनकार कर दिया। वे अदालतका दीवानखाना छोड़कर बाहर चले गये।

३५. हाथ पकड़कर उतारा

गांधीजीको डरबनसे प्रिटोरिया जाना था। उन्होंने पहले दर्जेका टिकट कटाया और रेल पर सवार हुए।

जब घरसे चलने लगे, तो लोगोंने समझाया और कहा : 'देखिये गांधीजी, यह हिन्दुस्तान नहीं है। यहाँ हम लोगोंको कोई पहले दर्जेमें बैठने नहीं देता।' हम कहते हैं: 'खबरदार ! आगे आप जानिये।'

गांधीजीने किसीकी सुनी नहीं। उन दिनों वे मानते थे कि बैरिस्टरीकी शान बनाये रखनेके लिए पहले दर्जेमें बैठना जरूरी है।

कुछ दूर तक किसीने कोई छेड़छाड़ न की। रातको करीब नौ बजे गाड़ी मैरित्सबर्ग नामके स्टेशन पर खड़ी हुई। यहींसे एक गोरा मुसाफिर गांधीजीके डब्बेमें बैठा।

मगर वह बैठे क्योंकर ? बैठते ही वह चकरा गया। उसने देखा, गजब हो गया : पहले दर्जेमें और कुली !

गोरा मुँहसे कुछ न बोला। फौरन उतरकर नीचे गया और स्टेशनके एक-दो अफसरोंको बुला लाया। अफसर आये, टुकर-मुकर देखा किये, मगर हिम्मत न हो कि कुछ कहें। आखिर एक अफसरने गांधीजीके पास जाकर कहा - 'सामी ! जरा सुनो, तुम्हें आखिरी डब्बेमें जाना होगा।' गांधीजीने कहा – 'मेरे पास पहले दर्जेका टिकट जो है।'

'कोई हर्ज नहीं, टिकट रहने दो। मगर मैं कहता हूँ कि तुम्हें आखिरी डब्बेमें जाना होगा।'

मैं भी कहता हूँ कि मैं डरबनसे इसी डब्बेमें बैठाया गया हूँ, और इसीमें जानेवाला हूँ।'

जवाब सुनकर अफसर तो दंग रह गया ! 'एक गोरे अफसरकी शानमें एक कुलीकी यह हिम्मत ?' अफसरने रोब गाँठते हुए कहा : हरगिज नहीं ! तुम्हें उतरना ही होगा; नहीं, सिपाही आकर तुम्हें उतार देगा।

गांधीजीने भी साफ कह दिया : 'अच्छी बात है, आने दीजिये सिपाहीको। मैं अपनी मरजीसे नहीं उतरूँगा।'

अफसर चिल्लाता हुआ गया और सिपाहीको बुला लाया। आते ही सिपाही डब्बेमें घुसा, हाथ पकड़कर गांधीजीको धकेला, नीचे उतारा, और सामान उठाकर बाहर फेंक दिया।

गांधीजी इस समय आपेमें न थे। वे सिरसे पैर तक हिल उठे थे। खून खौल रहा था। वे न तो दूसरे डब्बेमें गये, न उन्होंने सामान ही छुआ ! प्लैटफार्म पर खड़े रहे, सो खड़े ही रहे, और गाड़ी चल दी।

सारी रात प्लैटफार्म पर पड़े रहे। कड़ाकेकी सर्दी थी। साथमें ओवरकोट था। लेकिन फेंके हुए सामानको आँख उठाकर देखनेका भी दिल न होता था। कहीं सामान लेने बढ़े और फिर बेइज्जती हुई तो ? बस, सारी रात ठण्डमें ठिठुरा किये, मगर सामानको हाथ न लगाया। जाड़ा खातेखाते दिलमें कई तरहके ख़याल आये और चले गये।

'रेलमें बैठकर आगे जाने और फिर बेइज्जत होनेसे फायदा क्या? बेहतर तो यह है कि वापस लौट जाऊँ।'

'नहीं, नहीं, यह कैसे हो सकता है ? जिसका बीड़ा उठाया, उसे अधबीचमें कैसे छोड़ा जा सकता है ?'

'इस देशमें रहकर धन कमानेसे फायदा क्या ? बेहतर है कि हिन्दुस्तान वापस चला जाऊँ।'

'नहीं, नहीं, यह कैसे हो सकता है ? यह तो डरपोकोंका काम है। क्या तू डरपोक है ?'

'तो क्यों न गोरे सिपाही और गोरे अफसर पर मुकदमा चलाऊँ, और यों दोनोंको उनकी हिमाकतका सबक सिखाऊँ ?'

'फजूलकी बात है। इससे होगा क्या ? यहाँके तमाम हिन्दुस्तानियोंके सर 'कुलीपन' का जो कलंक लगा हुआ है, क्या वह इससे धुलेगा ?'

इस तरह सोचते-सोचते गांधीजीने अपने मनको समझा लिया और अपमानकी इस कड़वी घूँटको पीकर रह गये।

३६. शिकरमकी बीती

प्रिटोरियाका रास्ता मुसीबतोंका रास्ता साबित हुआ। एकका किस्सा सुन चुके। दूसरीका सुनिये। उन दिनों चार्ल्सटाउनसे जोहानिसबर्ग तक रेल न थी। शिकरम चलती थी।

गांधीजीने शिकरमके लिए बाकायदा टिकट खरीदा। पर ज्योंही शिकरम पर सवार होने चले, गोरे शिकरमवालेने रोका। बोला : 'सामी ! तुम्हें नहीं बैठायेंगे। तुम्हारा टिकट पुराना है। कलका है।

उसने सोचा : 'परदेशी आदमी है, अजनबी है, बहानेसे काम चलता हो तो क्यों न चला लूँ?” मगर दरअसल उसकी नीयत कुछ और ही थी। वह नहीं चाहता था कि अपनी शिकरममें गोरे मुसाफिरोंके साथ काले कुलीको बैठावे।

लेकिन यह झाँसेबाजी क्योंकर चले ? आखिर शिकरमके अन्दर गोरोंके साथ तो नहीं, बाहर कोचवानकी बराबरीसे गांधीजी बैठाये गये। गांधीजी बहुत सिटपिटाये – मनमें उथल-पुथल मच गई : 'मैं यहाँ क्यों बैठूँ ? मुझे अन्दर क्यों नहीं बैठाया जाता ?'

लेकिन इस अपमानको भी वे पी गये और बाहर कोचवानके पास जा बैठे।

कुछ ही दूर गये थे कि मुसीबत शुरू हुई। शिकरमका गोरा मालिक साथमें था। उसकी इच्छा हुई कि वह बाहर बैठे और बीड़ी पीये। शायद हवा खानेका भी दिल रहा हो। लेकिन बाहर तो गांधीजी बैठे थे। गोरेने, अपनी जान, इसका भी रास्ता निकाल लिया। कोचवानके पास टाटका एक गन्दा-सा टुकड़ा पड़ा था। गोरेने उसे लेकर पैर रखनेके पटिये पर फैला दिया और गांधीजीसे बोला: 'ए सामी, तू यहाँ बैठ ! मैं कोचवानकी बराबरीसे बैठूँगा।'

सुनते ही गांधीजी तिलमिला उठे। सामने पहाड़-सा ऊँचापूरा और मजबूत गोरा था, और मुकाबलेमें दुबले-पतले और अकेले गांधीजी थे। मामला टेढ़ा था, मगर गांधीजी डरे नहीं। क्या डरकर अपमान सह लेते ?

गांधीजीने साफ कह दिया : 'देखिये, आपकी पहली गलती तो यह है कि आपने मुझे यहाँ बैठाया। मैंने भी जिद नहीं की, बैठ गया। अब आप बाहर बैठना चाहते हैं। आपको बीड़ी पीनी है। बैठिये, पीजिये। मगर मुझसे क्यों कहते हैं कि मैं आपके पैरोंमें बैठूँ? मैं अन्दर शिकरममें जानेको तैयार हूँ। आपके पैरों तले हरगिज न बैठूँगा।'

गांधीजी अभी अपनी बात भी पूरी नहीं कर पाये थे कि गोरा भिन्ना उठा। उसने तड़ातड़ तमाचे जड़ने शुरू कर दिये, और हाथ पकड़कर उन्हें नीचे घसीटने लगा। गांधीजीने बैठकके पास लगे हुए पीतलके सीखचोंको कटाकटाकर पकड़ लिया और मनमें तय कर लिया कि चाहे हाथ उखड़ जायँ, पर सलाइयाँ नहीं छोड़ूँगा।

गोरा गालियाँ दे रहा था; घसीट रहा था; और गांधीजी सीखचोंको पकड़े अड़े थे। न कुछ बोले, न अपनी जगह छोड़ी। दूसरे गोरे मुसाफिरोंने जब देखा कि मामला बढ़ रहा है, तो बाहर आये, बीच-बचाव किया, शिकरमवालेको बुरा-भला कहा और गांधीजीको छुड़ाया।

३७. धक्का

प्रिटोरियामें गांधीजी रोज शामको घरसे हवाखोरीके लिए निकलते और खुले मैदानमें टहलकर लौट आते।

सड़कके किनारे, दोनों ओर पैदल चलनेवालोंके लिए पक्का रास्ता बना था। गांधीजी इसी रास्ते रोज आते-जाते थे। इसी रास्ते पर प्रिटोरियाके प्रधान मंत्री मिस्टर क्रूगरका मकान था। एक मामूली-सा सीधा-सादा मकान; मगर दरवाजे पर सन्तरीका पहरा था। इसीसे लोग समझते थे कि किसी आला अफसरका मकान है।

गांधीजी हमेशा इसी रास्ते जाते थे; हमेशा प्रधान मंत्री मिस्टर क्रूगरके घरके सामनेसे गुजरते थे; सन्तरी हमेशा उन्हें देखता था, लेकिन कभी कुछ कहता न था।

उस दिन पता नहीं, क्या हुआ। शायद सन्तरी बदला था। नये सन्तरीने सोचा : 'अरे, यह काला कुली पटरी पर चलता है ? और सो भी प्रधान मंत्रीके घरके सामने ? वाह रे हिमाकत ! बच्चाको मजा चखाना चाहिये।'

उसने आव देखा न ताव; न बोला न चाला, न चेताया; बस एकाएक आगे बढ़कर गांधीजीको एक धक्का दिया, लात मारी और प्लैटफार्मसे नीचे गिरा दिया।

गांधीजी चौंक पड़े। यह कैसा गजब है ? कैसा सितम ? खड़े होकर सिपाहीसे जवाब तलब करने ही वाले थे, कि सामनेसे एक घुड़सवार आया और बोला : 'मिस्टर गांधी, मैंने सारी हरकत अपनी आँखों देखी है। तुम इस पर मुकदमा चलाओ, मैं गवाही दूँगा।'

यह घुड़सवार एक गोरा था और गांधीजीका दोस्त था।

गांधीजीने कहा: 'नहीं, इसमें मुकदमेकी क्या जरूरत है। यह जैसे हजारों हिन्दुस्तानियोंके साथ पेश आता है, वैसे ही मेरे साथ भी आया। बेचारा क्या करे ?'

दोस्तने कहा : 'नहीं, यह ठीक नहीं है; अैसोंको दुरुस्त करना ही चाहिये।'

गांधीजीने समझाते हुए कहा : ‘भाई, जहाँ सभी गोरे हमें 'कुली' समझते और हमसे नफरत करते हैं, वहाँ इस बेचारे नासमझ सिपाहीका क्या कसूर ?’

फिर तो उस गोरे मित्रने सिपाहीको सारी हकीकत समजाई। बेचारा बहुत सिटपिटाया और आकर गांधीजीसे माफी माँगने लगा।

३८. भाईने पीट दिया

दक्षिण अफ्रीकामें मीर आलम नामका एक पठान रहता था। तोशक-तकिये, गादी-गदेले भरकर बेचना उसका पेशा था। उसीसे उनका गुजर-बसर होता था।

मीर आलमकी गांधीजीसे अच्छी जान-पहचान थी। आफत-मुसीबतमें, काम-काजमें वह हमेशा गांधीजीकी सलाहसे चलता, और उनकी इज्जत करता था। जब गांधीजीने दक्षिण अफ्रीकामें सत्याग्रह शुरू किया, तो मीर आलम भी उसमें शामिल हुआ – दिलचस्पी लेने लगा।

सत्याग्रहके सिलसिलेमें गांधीजीको जेल जाना पड़ा। बहुतसे दूसरे हिन्दुस्तानियोंने भी बड़ी बहादुरी दिखाई और खुशी-खुशी जेल गये। आखिर सरकार झुकी और समझौता हुआ। कुछ लोगोंको यह समझौता पसन्द नहीं आया। मीर आलम उन्हींमें था। वह गांधीजी पर बहुत गुस्सा हुआ।

अफ्रीकामें उन दिनों एक बहुत ही खराब और अपमानजनक कानून बना था। इस कानूनके अनुसार वहाँके सभी हिन्दुस्तानियोंको सरकारी परवाने लेने पड़ते थे और उन परवानों पर अपनी दसों अँगुलियोंकी छाप देनी पड़ती थी। वे परवाने हरएकको रात-दिन अपने पास रखने पड़ते थे। जिसके पास परवाना न होता, उसे सजा ठुक जाती। ऐसा मनहूस यह कानून था। हिन्दुस्तानियोंने इसी कानूनके खिलाफ सत्याग्रह छेड़ा था। समझौतेमें यह तय पाया कि जो चाहे परवाना ले; न चाहे, न ले।

सत्याग्रहकी जीत हुई। सरकारने गांधीजीको जेलसे रिहा कर दिया। दूसरे सब सत्याग्रही भी छोड़ दिये गये। इसके बाद इस जीतकी खुशीमें एक जलसा हुआ।

जलसेमें मीर आलम भी मौजूद था। उसने खड़े होकर पूछा : 'इसमें हमारी जीत क्या हुई? परवाना लेनेकी बात तो कायम ही रही न ?'

गांधीजीने समझाते हुए कहा : 'जो न लेना चाहे, न ले। इतनी आजादी जिसमें रखी गई है। आप न चाहें, न लें।"

'और आप ?'

'मैं तो सबसे पहले लूँगा और दसों अँगुलियोंकी छाप भी दूँगा।'

'लोगोंको श़क है कि आप सरकारसे पैसा खा गये हैं। आपने रिश्वत ली है।'

'मैं कहता हूँ, यह गलत है। इसे कोई न माने।'

'अच्छी बात है; बन्दा भी खुदाकी कसम खाकर कहता है कि जो अव्वल परवाना लेने जायगा, वह मेरे हाथों मौत पायगा।'

गांधीजीने कहा: 'अपने भाईके हाथों मरनेमें मुझे खुशी ही होगी : मगर मैं सच्चाईसे

हरगिज न हटूँगा।'

इसके कोई तीन महीने बादका किस्सा है। परवाना लेनेकी तारीख नजदीक आ लगी। गांधीजी और दूसरे साथी नेताओंने यह तय कर लिया था कि वे सबसे पहले परवाने लेने जायँगे |

मीर आलम भी अपनी बात भूला न था। गुस्सेसे बेताब होकर वह मन ही मन बोल उठा : 'देखूँगा, वे कैसे परवाने लेते हैं।' इसके बाद अपने दो-तीन पठान दोस्तोंको साथ लेकर वह एक जगह रास्ता रोककर खड़ा हो गया।

गांधीजी उधरसे गुजरे। मीर आलमका दस्तूर था कि जब कभी गांधीजीसे मिलता, बड़े अदबके साथ उन्हें सलाम करता। उसके दिलमें उनके लिए बड़ी इज्जत थी। लेकिन आज वह फिरण्ट रहा। सलाम नहीं किया। गांधीजीने उसकी आँखोंको देखा, तो ताड़ गये कि खून सवार है, जरूर कोई अनहोनी होगी।

जब पठान चुप रहा, तो गांधीजीने खुद मुस्कराते हुए पूछा : 'कहो भाई मीर आलम, कैसे हो ?' उसने उसी तावमें सर झुकाते हुए कहा: 'अच्छा हूँ।'

समय होते ही गांधीजीका दल परवाना लेने चला। मीर आलम भी अपने दोस्तोंके साथ उनके पीछे हो लिया। जब आफिस कुछ ही दूर रह गया, तो मीर आलम लपककर गांधीजीके सामने जा पहुँचा और बोला: 'कहाँ जाते हो ?'

'दसों अँगुलियोंकी छाप देने और परवाना लेने। चाहो, तुम भी चलो। तुम्हें अँगुलियोंकी छाप न देनी होगी।

इसी वक्त पीछेसे किसीने कसकर लाठी तौली और वह खटाक् गांधीजीकी खोपड़ी पर आकर गिरी। पहले ही वारमें गांधीजी गश खा गये, और जमीन पर गिर पड़े। बेहोशीकी हालतमें भी पठान उन्हें डण्डों और लातोंसे मारते रहे। गांधीजीके साथ जो दूसरे नेता थे, उन्होंने बीचबचावकी कोशिश की, तो वे भी बेतरह पिटे।

यों मार-पीटकर पठानोंने रास्ता नापा, लेकिन राहगीरोंने उन्हें पकड़ लिया और पुलिसमें दे दिया।

बेहोशीकी हालतमें लोग गांधीजीको उठाकर पासके एक मकानमें ले गये। वहाँ वे सुलाये गये और उनकी मरहम-पट्टी हुई। उनका एक होंठ फट गया था, दाँतमें चोट पहुँची थी और पसलियोंमें दर्द हो रहा था।

कुछ देर बाद जब होश आया तो जानते हो, पहला सवाल गांधीजीने क्या पूछा ?

'मीर आलम कहाँ है ?'

एक सेवकने कहा : 'आप आराम कीजिए। मीर आलमको और उसके साथियोंको पुलिस पकड़कर ले गयी है |'

गांधीजी चौंक पड़े। उन्होंने कहा : "नहीं, नहीं, उन लोगोंको तुरन्त छुड़ाना चाहिये।' और उन्होंने उसी दम पुलिस अफसरको एक चिट्ठी लिखी और उनसे प्रार्थना की कि वे उन पठान भाईयोंको छोड़ दें। गांधीजी नहीं चाहते थे कि उन्हें सजा हो।

गांधीजीकी चिट्ठी पाकर पुलिस अफसरने मीर आलमको और उसके साथियोंको रिहा कर दिया। लेकिन बादमें जब वहाँके गोरोंने हायतोबा मचाई, तो पुलिसने उन्हें फिर गिरफ्तार कर लिया और छः महीनोंकी सजा ठोंक दी।

इस मार-पीटमें गांधीजीके अगले दाँत गये। वह गड्ढा आज भी उनके मुँहकी शोभा बढ़ा रहा है। माईका दिया हुआ, प्रेमसे सहा हुआ, और सत्यकी रक्षामें मिला हुआ वह एक उपहार है - तोहफा है।

३९. मीर आलम मुरीद बना

अब आगेका मजेदार किस्सा सुनिये।

दक्षिण अफ्रीकाकी सरकार अपनी बात पर कायम न रही। बस, गांधीजीने फिरसे लड़ाई छेड़ दी।

लोगोंसे कहा गया कि सरकारने धोखा दिया है। हमें फिरसे सत्याग्रह करना है। जो परवाने हमने अपनी राजीखुशीसे लिये हैं, उनको इकट्ठा करके जला देना है। जिन्हें लड़ाईमें शामिल होना हो, वे अपने-अपने परवाने लौटा दें |

लोग मारे खुशीके पागल-पागल हो गये। गांधीजीके दफ्तरमें परवानोंकी झड़ी लग गई।

परवानोंकी होली जलानेका दिन तय हुआ। उस दिन एक बड़ी भारी आम सभा हुई। सभाके बीचोंबीच परवानोंका ढेर रचा गया।

गांधीजीने पूछा। 'भाईओ ! साफ-साफ कहना, आपने अपनी राजी-खुशीसे ये परवाने जलानेको दिये हैं न ?'

हजारो एक साथ बोल उठे : 'जी हाँ, राजी-खुशीसे दिये हैं।'

'अब भी वक्त है, जो चाहें, अपना परवाना वापस ले सकते हैं।'

'नहीं, नहीं, हम वापस नहीं लेंगे।'

'देखिये, खबरदार ! लड़ाई जोरकी ठनेगी, जेल जाना होगा।'

'परवा नहीं, जेल जायँगे। आप इनमें आग लगा दीजिये।'

इतनेमें सभाके बीच एक पठान खड़ा हुआ और बोला :

'गांधी भाई, लो, यह मेरा परवाना भी लो, और जला दो। मैं तुम्हारा गुनहगार हूँ। मुझे माफ करो। मैंने तुम्हें पहचाना न था। तुम सच्चे बहादुर हो।'

यह पठान और कोई नहीं, हमारा मीर आलम ही था।

भरी सभामें गांधीजीने उससे हाथ मिलाया। सारी सभा तालियोंकी गड़गड़ाहटसे गूँज उठी। गांधीजीने परवानों पर किरासिन छिड़का और आग जला दी। होली धधक उठी।

बस, मीर आलम उसी दिनसे गांधीजीका भक्त (मुरीद) बन गया, और उनके न चाहते हुए भी, रात-दिन परछाईओंकी तरह उनके साथ रहने लगा। वह डरता था कि कहीं कोई गांधीजीको सताये न !

४०. जबर्दस्त तूफान

गांधीजी अफ्रीकासे हिन्दुस्तान आये। कुछ दिन यहाँ रहे, और वापस दक्षिण अफ्रीका जानेके लिये जहाज पर सवार हुए। यह उनकी दूसरी यात्रा थी। इस बार श्रीमती कस्तूरबा और बच्चे भी उनके साथ थे। रास्तेमें जहाज एक तूफानसे घिर गया। जोरोंका तूफान था। मुसाफिर डर गये। खानापीना हराम हो गया। उल्टियों और उछाटोंके मारे लोग दिक आ गये। ऐसे समय गांधीजीने सबकी सेवा की। सबको ढारस बँधाया। लेकिन सच्चा तूफान तो डरबनमें आनेवाला था।

डरबनके गोरोंको खबर मिल चुकी थी कि गांधी वापस आ रहा है। सब आग-भभूका हो उठे। बोले: 'फिर वह हमारे देशमें आ रहा है ? उसीने न हिन्दुस्तान जाकर हमारी शिकायत की ? वही न हमें सारी दुनियामें बदनाम कर रहा है ? बस, निकाल बाहर करो उसे। मजाल है, जो यहाँ कदम रखे।'

कुछ लोगोंने कहा : 'यह गांधी बहुत ही बदमिजाज है; बड़ा मक्कार है; नाकों दम कर रखा है इसने। किसीको सुखसे रहने ही नहीं देता। बस, हर बातमें 'कुलियों' को हमारे खिलाफ भड़काता रहता है। कसम खाओ कि उसे अपनी जमीन पर पैर न रखने देंगे।

दूसरोंने गरज कर कहा: 'और अबकी तो वह अपने बीबी-बच्चोंको लेकर आ रहा है। मानो, यहीं अड्डा जमाना चाहता है। हम भी देखेंगे, कि बच्चा कैसे आते हैं और कैसे बसते हैं।'

तीसरे दलने चिल्लाकर कहा: "कुछ खबर भी है, यारो? अबकी वह अकेला नहीं आ रहा; दो जहाज भर कर 'कुलियों' को अपने साथ ला रहा है।'"

'लावे बलासे; लेकिन यहाँ उसे उतरने कौन देगा ?'

'चलो, सरकारसे कहा जाय, मनाही हुक्म जारी कर दे।'

'और अगर सरकार न सुने, तो हमीं गांधीको उठाकर सागरमें फेंक दें।'

डरबनके गोरोंने सच-झूठ बहुत-कुछ सुन रखा था। इसीलिए वे उतने भिन्ना रहे थे।

इधर गांधीजीको गोरोंके इस गुस्सेका कोई पता ही न था। उनका जहाज डरबनके बन्दरगाहमें आ लगा। .

बन्दरगाहके अफसरोंने देखते ही मनाही कर दी। कहला दिया :

'दूर रहो ! अपना जहाज यहाँ न लगाओ। यहाँ उतरनेकी मनाही है। तुम्हारे देशमें प्लेग फैला है। तुम्हें 'क्वारण्टीन' में रहना पड़ेगा।'

'लेकिन हमारे जहाजमें कोई बीमार नहीं है।'

'भले न हो ! क्वारण्टीनमें तो रहना ही होगा।'

'कै दिन रहना होगा?'

'२३ दिन |'

गांधीजीको अचम्भा हुआ। ये बन्दरगाहवाले इतना कड़ा रुख क्यों दिखा रहे हैं ? धीमे-धीमे डरबनकी बातें कान पर आती गईं और भेद खुलता गया।

कुछ लोग जहाजके मुसाफिरोंको डराने लगे : 'अरे भाई, लौट जाओ ! नहीं, समन्दरमें डुबो दिये जाओगे।'

कुछने जहाजके मालिकको डाँटना शुरू किया : 'अपना जहाज वापस हिन्दुस्तान ले जा। वरना बरबाद हो जायगा।'

लेकिन धन्य हे उनको कि उनमें से न तो कोई डरा, और न कोई डिगा।

२३ दिन तक सब समुद्रकी हवा खाते रहे, और बड़े मजेसे जहाजमें ये दिन गुजार दिये। आखिर क्वारण्टीनसे छुटकारा मिला। सभी हँसते-खेलते हिम्मतके साथ डरबनके बन्दर पर उतरे। गोरे मुँह ताकते रह गये।

इतनेमें एक अफसरका संदेशा आया : ‘गांधीजीसे कह दो, दिनमें जहाजसे न उतरें; नहीं, जानका खतरा है।‘

इस पर एक मित्रने गांधीजीसे पूछा : ‘कहिये, क्या इरादा है ? आपको डर तो नहीं

लगता न ?’

‘नहीं, डरकी क्या बात है ?’

‘तो फिर आइये, दिन-दहाड़े चलें। मैं आपके साथ हूँ। क्या हम चोर हैं, जो अँधेरेमें जायँ ?’

गांधीजीने अपने परिवारके लोगोंकों एक गाड़ीमें बैठाया; शहरकी तरफ रवाना किया; और खुद अपने दोस्तके साथ पैदल डरबनकी ओर चले।

दोनों दोस्त शहरमें दाखिल हुए। कुछ दूर तक तो किसीने गांधीजीको पहचाना ही नहीं। बादमें कुछ गोरे छोकरोंने, जो उधरसे जा रहे थे, गांधीजीको देख लिया। उस देशमें वैसी पगड़ी पहननेवाले गांधीजी अकेले ही थे, इसलिये फौरन पहचान लिये गये।

उन्हें देखते ही छोकरोंने शोर मचाना शुरू कर दिया :

‘गांधी है ! गांधी है !

मारो ! मारो !

पकड़ो ! पकड़ो !’

शुरू-शुरूमें लौंडे चिल्लाते रहे। फिर कंकर फेंकने लगे। इतनेमें बच्चोंके साथ बड़े-बूढ़े भी शामिल हो गये।

मित्रने गांधीजीसे कहा : ‘जानका खतरा है। जल्दी भाग निकलना चाहिये। चलिये, रिक्शामें बैठ चलें।'

गांधीजीने चौंककर पूछा : “रिक्शामें ? भाई, रिक्शा तो आदमी चलाता है। मुझे वह पसन्द नहीं। मैं नहीं बैठूँगा।'

'अजी साहब, बैठ चलिये ! पसन्दकी एक ही कही। यहाँ जानके लाले पड़े हैं, आफतके बादल सर पर मँडरा रहे हैं, और आप पसन्दकी चर्चा चला रहे हैं।'

दोस्तने रिक्शावालेको आवाज दी। रिक्शा आई। गांधीजी अपने मनको समझाकर उस पर सवार होना ही चाहते थे कि उतनेमें लोगोंकी उस टोलीने रिक्शावालेको घेर लिया।

डपटकर बोले : 'खबरदार ! भूलकर भी इन्हें न बैठाना। नहीं, रिक्शा तोड़ डालेंगे। सर फोड़ डालेंगे।'

बेचारा हबसी ! उसकी हिम्मत ही कितनी ? डर गया। 'खा' (ना) कहकर लौट पड़ा। जान लेकर भागा।

अब कोई चारा न रहा। आगे गांधीजी थे। पीछे लागोंकी भीड़ थी। जैसे बढ़ते गये, भीड़ भी दुगुनी-चौगुनी होती गई। आगे गांधीजी चल रहे थे, पीछे गोरोंका एक जंगी जुलूस आ रहा था।

शरारतियोंकी उस भीड़में से एक मोटा-ताजा गोरा सामने आया। उसने गांधीजीके साथीको अपनी बगलमें दबाया, और उन्हें लेकर एक ओर हट गया।

अब मैदान साफ था। गांधीजी अकेले पड़ गये थे। लोगोंने उन पर गालियोंकी बौछार और पत्थरोंकी मार शुरू कर दी। एक हजरत जो आगे बढ़े, तो गांधीजीकी पगड़ी उछालकर चलते बने। एक दूसरे मुस्टण्डे गोरेने दो चपतें रसीद कीं, और लात मारकर छू हुआ।

अकेले गांधीजी क्या करते? चक्कर खाकर गिरने ही वाले थे कि पासके एक घरकी जाफरी हाथमें आ गई। थामकर खड़े हो गये। कुछ देर सुस्ताये और फिर चल पड़े।

बड़ा नाजुक मौका था। गांधीजी घिर गये थे। जानका खतरा था। इतनेमें उधरसे एक बहादुर गोरी महिला गुजरीं। वह डरबनके पुलिस अफसरकी पत्नी थीं और गांधीजीको पहचानती थीं। वह दौड़कर गांधीजीके पास पहुँच गई और धूप न रहते हुए भी उनके सर पर अपने छातेकी छाया करके साथ-साथ चलने लगीं।

गोरे सिटपिटा गये। उन्हें इस नेक और बहादुर औरतका लिहाज रखना ही पड़ा। भीड़ कुछ छँटी। लोग कुछ हटकर चलने लगे। फिर भी बीच-बीचमें कुछ मनचले लोग दौड़कर आतें और गांधीजीको चपतिया कर चले जाते थे। उन्हें इसीमें मजा आता था।

इतनेमें पुलिसका एक दस्ता आ पहुँचा। उसने शरारियोंकी भीड़को तितर-बितर किया और गांधीजीको उनकी इच्छाके अनुसार उनके मित्र और डरबनके मशहूर व्यापारी पारसी रुस्तमजीके घर पहुँचा दिया।

गोरोंकी वह शैतानी टोली उस समय तो बिखर गई; लेकिन रातमें फिर हजारों गोरे पारसी रुस्तमजीके घरके सामने इकट्ठा हो गये और शोर मचाने लगे।

उनकी एक ही पुकार थी – एक ही नारा :

'गांधीको सौंप दो, नहीं, घर फूँक देंगे।'

मगर रुस्तमजी थे कि टससे मस न हुए।

इस मौके पर डरबनके पुलिस अफसरने बड़ी चतुराईसे काम लिया। उन्होंने अपने भरोसेके एक अफसरको रुस्तमजीके घरमें भेजा। गांधीजीको सलाह दी कि वे भेस बदलकर वहाँसे खिसक जायँ। फिर खुद लोगोंकी भीड़में जाकर मिल गये और उसे बहलाने लगे।

उन्होंने रुस्तमजीके दरवाजेके सामने अपने लिये एक तख्त रखवा लिया; उस पर चढ़ गये और लोगोंसे गपशप लड़ाने लगे। एक तुक जोड़ ली, और लोगोंसे गवाने लगे :

"आओ रे आओ! गांधीको लाओ !

जिन्दा जलाओ ! फाँसी चढ़ाओ !

इमलीके पेड़ पर फाँसी चढ़ाओ !"

लोग झूम-झूमकर गाने लगे।

अमलदारने अपने मनमें कहा : 'बच्चो, चिल्लाते रहो, जितना चिल्लाना चाहो ! दरवाजा मेरे कब्जेमें है। जाओगे किधर ?'

बाहर यह तमाशा हो रहा था। अन्दर गांधीजी पुलिस अफसरकी भेजी हुई देशी पुलिसकी पोशाक पहन रहे थे। गांधीजीको यह चीज जँची तो नहीं, मगर मजबूरी थी। जब पहन चुके, तो दोनों बगलके तहखानोंमें घुसे। कुछ देरमें सिरेके एक तहखानेका दरवाजा खुला ! दो जवान उसमें से बाहर निकले; दोनों बलवाईयोंकी भीड़में पैठे और बेदाग उस पार निकल गये। उनकी तरफ किसीने देखा तक नहीं। फुरसत किसे थी, जो देखे ?

लोग तो झूम-झूम कर उस तुकको गानेमें लगे थे :

"आओ रे आओ! गांधीको लाओ !

जिन्दा जलाओ ! फाँसी चढ़ाओ !

इमलीके पेड़ पर फाँसी चढ़ाओ !"

जब पुलिस अफसरको खबर मिली कि गांधीजी सहीसलामत दूसरे मुकाम पर पहुँच गये हैं, तो उसने फौरन बाजी उलट दी, और लोगोंसे कहा : दोस्तो, अब आप थक गये होंगे। जाइये, घर जाकर आराम कीजिये।'

लोग एकदम पुकार उठे: 'नहीं जायेंगे; हरगिज न जायेंगे। गांधी कहाँ है ? गांधीको लाओ !'

अमलदारने जरा हँसकर कहा: 'मान लीजिये, आपका शिकार आपके सामनेसे निकल भागा हो, तो आप क्या कीजियेगा ?'

'वाह, खूब कही; निकल भागा हो ! कैसे निकल भागा हो ? हम इतने जो खड़े हैं यहाँ ?'

'तो मैं आपसे सच कहता हूँ कि आपका शिकार आप ही के बीचसे होकर निकल गया है।'

'झूठ ! सरासर झूठ ! हम हरगिज न मानेंगे।'

'अच्छी बात है; अगर अपने बूढ़े फौजदारका आपको यकीन नहीं है, तो आप खुद अन्दर जाकर देख लीजिये। लेकिन सब नहीं जा सकेंगे। अपनेमें से दो-चारकों चुनकर भेज दीजिये।'

लोगोंने पंचोंको अन्दर भेजा कि जाकर देख आवें। उन्हें यकीन हो गया कि गांधीजी घरमें नहीं हैं। जब लोगोंने सुना, तो चकराये ! खुशमिजाज फौजदारने कहा : दोस्तो, आपने अपनी पुलिसकी बात नहीं रखी, तो पुलिसको आपसे छल करना पड़ा। हम लोग तो आपके नौकर ठहरे; किसी भी तरह अपना काम बजा लाना हमारा फर्ज है न ? अब आप मेहरबानी करके जाइये। पुलिसकी जीत हुई; आप लोगोंकी हार।'

जो दाँत कटकटाते आये थे, वही खिलखिलाते हुए लौट गये। इस बवण्डरके बाद कई दिन बीत गये। गांधीजीकी चोटें दुरुस्त हो गईं। गोरोंके दिमाग ठण्डे पड़ गये। सब अपने-अपने काम-धन्धेसे लगे।

मारपीट करनेवाले गोरोंका ख़याल था कि वह 'कुली' बैरिस्टर उन्हें छोड़ेगा नहीं; मुकदमा चलायेगा; सजा ठुकवायेगा।

सरकारवाले रोज राह देखते थे कि गांधी आज शिकायत करेंगे, कल करेंगे।

लेकिन गांधीजीका तो तरीका ही कुछ और था ! दंगाइयोंको वे दयाकी दृष्टिसे देखते थे। मारनेवालोंको मन ही मन माफ कर चुके थे। वे जानते थे कि बेचारे नासमझ हैं।

एक दिन गांधीजीको डरबनके एक बड़े अफसरने बुलाया और कहा:

'गांधीजी, आपको जो चोट पहुँची, जो परेशानी उठानी पड़ी, उसके लिए हम सचमुच दुःखी हैं। मानता हूँ कि जिन्होंने आपको सताया, वे सब गोरे थे। लेकिन गोरे हुए तो क्या हुआ ? वे गुनहगार हैं। सजावार हैं। यह न समझिये कि वे बच जायेंगे। सरकार चाहती है कि उन्हें सजा हो। आप जरा उनकी शनाख्त करवा दीजिये।

गांधीजीने बड़ी शान्तिके साथ कहा :

‘इस सहानुभूतिके लिए मैं आपका आभारी हूँ। लेकिन दरअसल मुझे किसीसे कोई शिकायत नहीं।‘

‘आप अपराधियोंको पहचान तो सकते हैं न ?’

‘शायद दो-चारको पहचान सकूँ ! लेकिन मैं मानता हूँ, उन बेचारोंका कोई कसूर नहीं है।'

‘गांधीजी, आप यह क्या कहते हैं ? क्या उन दुष्टोंने आपको पीटा नहीं ? सताया नहीं ?’

गांधीजीसे न रहा गया। उन्होंने बिना झिझके साफ-साफ गोरे हाकिमसे कह दिया : ‘माफ कीजिये, असली गुनहगार तो आप लोग हैं। आप-जैसोंने उन्हें उभाड़ा और वे दंगाई बन गये। उन बेचारोंका कसूर क्या है ? उन्हें सजा किस बातकी दिलाऊँ ?’

४१. हमारे पापका फल

जब गोरे हमें 'कुली' कहते हैं, तो हम तिलमिला उठते हैं। अब सोचिये कि जिनको हम ढेढ़, भंगी, अछूत वगैरा कहते हैं, उन पर क्या बीतती होगी ?

हम इन लोगोंका कितना अपमान करते हैं ? इनको न हम छूते हैं, न इन्हें अपनी बस्तियोंमें रहने देते हैं, और न अपनी सड़कों पर आजादीसे चलने देते हैं। जब कभी इन्हें हमारे बीचसे निकलना पड़ता है, तो चिल्लाते-चिल्लाते बेचारोंका गला बैठ जाता है :

'दूर रहना, माँ-बाप !'

'छूना नहीं, मालिक !'

'आप ही के भंगी हैं, 'अन्नदाता' !'

कैसा घोर अपमान है ?

बेचारे प्यासों मरते हैं, पर हम हैं कि अपने कुओं पर उन्हें पानी तक नहीं भरने देते।

गाँवके सभी लड़के स्कूलमें पढ़ते हैं, पर इनके लड़कोंको हम स्कूलका मुँह नहीं देखने देते। उन्हें दाखिल नहीं करते। करते हैं, तो दूर एक कोनेमें बैठाते हैं।

रेलगाड़ीमें सभी बैठते हैं, लेकिन ढेढ़, भंगी या चमारकों देखते ही 'जगह नहीं, जगह नहीं' चिल्ला उठते हैं।

मन्दिरमें गाँवके सभी लोग देव-दर्शनको जाते हैं। लेकिन इन अभागोंके लिये भगवानके घरके दरवाजे भी बन्द हैं।

यह कोई मामूली दुःख है ? छोटी-मोटी बात है ?

ये बेचारे गजरदम उठकर हमारी सड़कें बुहारते हैं, गटरें धोते हैं, गाँवको साफ रखते हैं, हमारे लिए कपड़ा बुनकर देते हैं, जूते बनाते हैं, और फिर भी हम इनसे फिरण्ट रहते हैं।

इन लोगोंको इतनी बड़ी सेवाके बदलेमें हम इन्हें क्या देते हैं ? अपनी जूठन ! अपमान, गाली, गन्दगी, गरीबी !

हमारे पापका अन्त नहीं है। फिर क्यों न देश-परदेशमें हमारी दुर्दशा हो ? क्यों न हम जहाँ-तहाँ ठुकराये जायँ ? गांधीजी कहते हैं कि हमारी गुलामी हमारी इन पापोंका ही फल है। भगवानने ही यह फल हमें दिया है: इसलिए वे हरिजनोंकी सेवा करते हैं, अपनेको हरिजन समझते हैं, और लोगोंको समझाते हैं, कि हरिजनोंको छूनेमें पाप नहीं, पुण्य है।

४२. हरिजन पहले

एक गाँवमें सभा रखी गई थी। गांधीजी उसमें बोलनेवाले थे।

गांधीजीका भाषण सुननेकी इच्छा किसे न होगी ? गाँवकी अठारहों जातके लोग आ-आकर इकट्ठा होने लगे - ब्राह्मण आये, बनिये आये, ठाकुर आये, पटेल, पटवारी, जमींदार, चौधरी, नाई, तेली, कुम्हार, चमार, बढ़ई, सभी कोई आये।

ढेढ़ोंके मुहल्लेसे ढेढ़ भी आये। उन्होंने सोचा : सभामें चलना चाहिये। बापूजी पधारनेवाले हैं। उनकी बातें सुननी चाहियें। उनके दर्शन करने चाहियें। न जाना ठीक न होगा। वे भी आये।

सभावालोंने ढेढ़ोंको पहचान लिया। लोग चिल्ला उठे : ‘अरे, ये तो ढेढ़ हैं ! दूर, दूर ! यहाँ नहीं; उधर जाओ।'

दूसरोंने कहा : ‘जाओ, बैरंग वापस हो जाओ ! तुम्हें किसने बुलाया था ? यहाँ तुम्हारा क्या काम है ?’

बेचारों पर चारों तरफसे फटकार पड़ने लगी ! कोई उनकी मदद पर आता ही न था।

गरीबोंने नरमीसे कहा : ‘मालिक, हमें भी बैठने दो न ! बापूजी तो हमारे भी हैं !

किसीको दया न आई। आखिर सभावालोंको समझाकर ढेढ़ोंके लिए कुछ दूर पर थोड़ी जगह दे दी गई और उनसे कह दिया गया : ‘यहाँ बैठो, लेकिन खबरदार ! किसीको छूना नहीं। किसीके पास जाना नहीं।'

‘नहीं मालिक ! नहीं जायेंगे, यहीं बैठेंगे।'

सभामें खासी भीड़ हो गई। पैर रखनेको जगह न मिलती थी। समय हुआ और गांधीजी आये। ‘वन्दे मातरम्' और ‘महात्मा गांधीकी जय’ के नारोंसे सभा-स्थान गूँज उठा। दूर बैठे

हुए उन हरिजन भाइयोंने भी जय-जयकारकी पुकारमें भाग लिया, और वे उझक-उझककर अपने बापूको देखने लगे।

आते ही गांधीजी सीधे मंच पर पहुँचे और भाषण करनेको खड़े रहे। उन्होंने एक नजरमें सारी सभाका सिंहावलोकन कर लिया। बड़ी पैनी आँखें हैं उनकी ! दूर बैठे हुए हरिजनोंकी उस टोलीको उन्होंने तुरंत ताड़ लिया।

गाँववालोंको बुलाकर पूछा : 'वे लोग अलग क्यों बैठे हैं ?'

'महात्माजी, वे ढेढ़ हैं।'

'क्या हर्ज है, अगर वे सबके साथ बैठें ?'

गाँववाले सोचमें पड़ गये; सर खुजलाने लगे।

'आप लोग उन्हें सभामें न बुला सकें, तो मैं उनमें जाकर बैठूँगा और वहींसे भाषण करूँगा।'

बस, गांधीजी मंचसे नीचे उतर आये, और अपने प्यारे हरिजनोंके पास जा पहुँचे। गाँवके कुछ साहसी लोग भी उनके साथ हो लिये। हरिजन भाइयोंकी खुशीका ठिकाना न था ! उनके दिल बाँसों उछल रहे थे। हृदय उमड़े पड़ते थे। वे गद्गद कण्ठसे पुकार उठे : 'बापूजीकी जय ! जुग जुग जीयें हमारे बापूजी।'

४३. आश्रममें हरिजन

गांधीजीने साबरमतीके किनारे अपना आश्रम खोला और ऐलान किया कि कोई भला हरिजन आश्रममें भरती होना चाहेगा, तो उसे खुशी खुशी भरती किया जायगा।

शहरके सेठोंने सोचा: 'गांधीजी तो यों ही कहते रहते हैं। मगर ऐसे ठाले हरिजन हैं कहाँ, जो आकर आश्रममें भरती होंगे ?' लोग इसी ख़यालमें मस्त रहे और गांधीजीके आश्रमको पैसे-टकेसे इमदाद पहुँचाते रहे। आश्रमके खर्चके बारेमें लोगोंने गांधीजीको बिलकुल बेफिकर बना दिया।

कुछ दिन ऐसे ही बीत गये। एक दिन अचानक एक हरिजन परिवार आश्रममें आ धमका ! औरत, मर्द और दुधमुँही बच्ची ! तीन प्राणी थे। साथमें ठक्कर बापाकी सिफारिश थी।

गांधीजीने सोचा : 'बस, परीक्षाका समय आ गया। भगवान् अब कसौटी पर चढ़ाना

चाहता है। इसीलिए उसने इनको भेजा है।'

आये हुए हरिजनसे पूछा – 'आश्रमके नियम तो जानते हो न ?'

'जी हाँ।'

'नियमोंका पालन कर सकोगे ?'

'जी हाँ, कोशिश करेंगे।'

'बड़ी अच्छी बात है। आप लोग सुखसे यहाँ रहिये, और आश्रमको अपना घर समझिये।' '

इस तरह एक हरिजन परिवार आश्रमवासी बना। तीनों प्राणी सबके साथ रहते, सबमें मिलकर काम करते, और सबकी बराबरीसे बैठकर खाते।

आश्रममें सब लोग एक-सी समझके नहीं थे। कइयोंकों यह बुरा लगा। उनके दिलमें खलबली मच गई। लेकिन गांधीजीने सबको साफ साफ कह दिया :

'मेरे लिए तो हरिजन पहले हैं। जिनसे इस धर्मका पालन न हो, वे खुशी खुशी आश्रम छोड़ सकते हैं; फिर चाहे वह मेरी पत्नी हो चाहे पुत्र हो।'

बात बिजलीकी तरह बस्ती भारमें फैल गई कि गांधीजीके आश्रममें एक ढेढ़ रहने लगा है।

जो सेठ-साहुकार गांधीजीकी मदद करते थे, लेकिन कट्टर सनातनी थे, वे चौंक पड़े। उन्होंने मदद बन्द कर दी। वे कहने लगे – 'भला आदमी जो कहता था, वही करने भी लग गया। ये तो धरम डुबोनके ढंग हैं। ऐसे अधर्मीको कौन मदद करे ?'

मगनलाल गांधी आश्रमके व्यवस्थापक थे। उन्हें फिकर हुई। वे एक दिन छोटा-सा मुँह लेकर गांधीजीके पास आये और बोले – 'बापू थैली तो अभीसे हलकी हलकी है। अगले महीने क्या होगा ?'

गांधीजीने ढाढ़स दिलाते हुए कहा – 'भगवान् पर भरोसा रखो। जब कुछ नहीं रहेगा, तो हम ढेढ़ोंकी बस्तीमें जाकर बस जायेंगे, मजदूरी करेंगे और पेट पालेंगे, मगर सचाईसे तिलभर भी न हटेंगे !'

४४. दो ऐतिहासिक कूच

अपने सत्याग्रहकी लड़ाईमें गांधीजी कभी कभी कूचका भी कार्यक्रम रखते हैं। सत्याग्रहकी ऐसी एक कूच उन्होंने दक्षिण अफ्रीकामें की थी और दूसरी हिन्दुस्तानमें। हिन्दुस्तानवाली कूच दाँडीकूचके नामसे मशहूर है।

दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहमें जब सरकारने मनमानी पर कमर कस ली, तो गांधीजीने तीन पौण्डवाले 'जजिया' के खिलाफ लड़ाई छेड़ दी, और हजारों गिरमिटिया मजदूरोंको लड़ाईमें शामिल होनेकी दावत दी। मजदूरोंने धड़ाधड़ खेतों और कारखानोंसे रुखसत ली और गांधीजीके झण्डे तले आ डटे।

अब गांधीजी सोचने लगे कि सत्याग्रहका वह कौनसा तरीका होगा, जिससे मजबूर होकर सरकारको हजारों सत्याग्रहियोंकी मुश्कें बाँधनी पड़ें - हजारोंको जेल भेजनेका इन्तजाम करना पड़े।

आखिर गांधीजीको एक ऐसा तरीका सूझा, जिसका किसीको सपना भी न था। उन्होंने ऐलान कर दिया कि वे अपने भारी काफिलेके साथ पैदल कूच करेंगे, और बिना परवानेके ट्रान्सवालकी हदमें घुसकर परवानोंका कानून तोड़ेंगे।

बस कूचका दिन तय हो गया। कूच शुरू हो गई। २,२११ आदमियोंका वह काफिला क्या था, एक छोटी-मोटी निहत्थी फौज ही थी ! उस काफिलेमें मर्दोंके साथ १२७ औरतें भी थीं। मजदूर अपने बाल-बच्चोंको साथ लिये कूच कर रहे थे। अपना-अपना सामान सब अपने कन्धों पर लादे चले जा रहे थे। काफिला एक हद छोड़कर दूसरी हदमें जा पहुँचा। परवानेका कानून तूट गया। मगर सरकार भिनकी तक नहीं। रातमें जब सब लोग खा-पीकर सो रहे, तो पुलिस चुपकेसे आई और गांधीजीको गिरफ्तार करके ले गई।

सवेरे साथियोंको पता चला। लोगोंके जोशका ठिकाना न रहा। उन्होंने नये जोशसे कूच शुरू कर दी। दूसरे दिन गांधीजी जमानत पर छोड़ दिये गये। छूटते ही वे अपने दलमें आ मिले। लोगोंका उत्साह चौगुना हो गया।

अगले मुकाम पर सरकारने गांधीजीको फिर गिरफ्तार किया, फिर जमानत पर छोड़ा और गांधीजी फिर अपने साथियोंके बीच आ पहुँचे। लोगोंके हर्षका पार न रहा।

इस काफिलेको बड़ी लम्बी-लम्बी मंजिलें तय करनी पड़ती थीं। दूरका रास्ता था। राहमें एक बच्चा बीमार पड़ा और मर गया। सारी छावनीमें शोक (मातम) छा गया। लोगोंने बहादुरीके साथ इस चोटको सहा और आगे बढ़ चले।

जैसे ही पड़ाव पड़ता, लोग सोने-बैठने, खाने-पीने, और झाड़ने-बुहारनेकी तैयारियोंमें जुट पड़ते; किसीको दम मारनेकी फुरसत न रहती। जहाँ पड़ाव होता, वहाँके हिन्दुस्तानी व्यापारी बड़े प्रेमसे काफिलेवालोंके लिए खाने-पीनेका सामान पहुँचा देते।

तीसरी बार जब सरकारने गांधीजीको पकड़ा, तो फिर पकड़ा ही पकड़ा। जमानत पर भी न छोड़ा। मुकदमा चलाया और सजा ठोक दी। गांधीजी जेल चले गये।

अगले मुकाम पर सरकारने सब सत्याग्रहियोंकों भी दलबलके साथ गिरफ्तार कर लिया और दो स्पेशल गाड़ियोंमें चढ़ाकर रवाना कर दिया।

दाँडीकूच तो अभी कल ही की बात है। उसे कौन नहीं जानता ? जब गांधीजीने पूर्ण स्वराज्य या मुकम्मल आजादीके लिए जंग छेड़नेका बीड़ा उठाया, तो उनके सामने सवाल पैदा हुआ कि सत्याग्रहियोंके लिए जेलखानोंके दरवाजे क्यों कर खुलें। उन्होंने छान-बीन शुरू की। कई बातें सोची गईं; कई सुझाई गईं; अंतमें नमकका कानून तोड़नेकी बात तय पायी। गांधीजीको वही जँच गई।

नमकका कानून तोड़नेके लिए गांधीजीने दाँडीकूचका कार्यक्रम बनाया और कुच शुरू करनेसे पहले यह भीषण प्रतिज्ञा की – 'जंगल जंगल भटकूँगा; दर-दरकी खाक छानूँगा; कौए-कुत्तेकी मौत मरूँगा; लेकिन मुकम्मल आजादीके बिना, संपूर्ण स्वराज्यके बिना, वापस आश्रममें पैर न रखूँगा।' बस, इस प्रतिज्ञा के साथ वे चल पड़े।

कार्यक्रम यह बनाया कि साबरमती आश्रमसे पैदल चलेंगे। गुजरातके गाँवों और शहरोंमें ठहरते हुए चलेंगे। अन्तमें समुद्रके किनारे दाँडी तक पहुँचकर वहाँ खुद नमक बनावेंगे, और नमकका कानून तोड़कर मुल्कमें लड़ाईका ऐलान करेंगे।

आश्रमके ८० साथियोंका एक दल बनाकर गांधीजी १२ मार्च, १९३० को साबरमतीसे चल पड़े। सुबह-शाम चलते; दुपहरमें और रातमें मुकाम करते; मुकाम पर पहुँचकर लोग खाते-पीते, चरखा और तकली चलाते; और गांधीजी लोगोंको आजादीकी लड़ाईका सन्देश या पैगाम सुनाते। जहाँ-जहाँ कूचवाले जाते, जहाँ वे ठहरते, जिन गाँवों और शहरोंके पाससे होकर निकलते, वहाँ लोगोंके दलके दल उनके दर्शनोंको उमड़े चले आते। अपने बापूको देखकर और बापूकी वाणी सुनकर वे गद्गद हो उठते - उनकी आँखोंमें खुशीके आँसु छलछला आते।

लोग रोज सोचते कि आज गिरफ्तार होंगे, कल गिरफ्तार होंगे; और रोज उनकी अटकलें झूठी पड़तीं। आखिर गांधीजी दाँडी पहुँचे; वहाँ समुद्रमें नहाये; समुद्रके पानीसे नमक बनाया और नमकका कानून तोड़ा। फिर भी सरकार चुप रही, उसने गांधीजीकी गिरफ्तारीका हुक्म न छोड़ा।

सारे देशमें नमकका कानून टूटने लगा - लोग घर घर नमक बनाने और कानून तोड़ने लगे।

सरकारी दमन शुरू हो गया; लोग गिरफ्तार होने लगे; जहाँ-तहाँ लाठियों और डण्डोके जोरसे सभायें तोड़ी जाने लगीं; कई जगह औरतों पर लाठियाँ चलीं, बच्चों पर डण्डे बरसे। इन खबरोंसे गांधीजी बेचैन हो उठे। वे सोचने लगे – 'ये डण्डे औरतों और बच्चों पर न बरसकर मुझ पर बरसने चाहियें। मैं कया करूँ ? कैसे ये मुझ पर बरसें ?'

आखिर उन्होंने धारासणा पर घावा करनेका, वहाँके सरकारी नमकको लूटनेका, निश्चय किया। लेकिन लूटके लिए जिस दिन कूच करनेवाले थे, उसके एक दिन पहले ही रातमें पुलिस आई और चुपकेसे गांधीजीको चुरा ले गई। फिर उनके साथियोंने धारासणा पर घावा बोला।

४५. राष्ट्रीय उपवास

पंजाबमें मातृभूमिका, मादरे हिन्दका, घोर अपमान हुआ था। इस अपमानसे सबके दिलोंमें एक आग जल ऊठी थी, और सारे मुल्कने मिलकर सत्याग्रह करनेका निश्चय किया था।

लेकिन यह इतना बड़ा काम, भगीरथ काम, शुरू कैसे किया जाय ? गाँव गाँवमें और नगर नगरमें सभायें करके ? हाँ, यह एक करने लायक काम है। लेकिन गांधीजीको सिर्फ सभाओंसे संतोष क्योंकर हो ?

अच्छा तो गाँव - गाँव और शहर शहरमें हड़ताल मनाई जाय ?

ठीक है, इससे भी हमारा कदम कुछ आगे तो बढ़ता है; लेकिन गांधीजीकी तसल्लीके लिए यह भी काफी न था। वे तो किसी ज्यादा बड़ी चीजके लिए तड़प रहे थे। आखिर एक बात सूझी। तय किया गया कि देशके सब लोग एक ही दिन इस सिरेसे उस सिरे तक फाका करें, उपवास रखें।

सन् १९२१ का साल था और अप्रैल महीनेकी १३वीं तारीख। गांधीजीका संदेश, अनुका चैगाम, देशभरमें फेल चुका था। उस दिन देशके इस कोनेसे उस कोने तक लोगोंने व्रत रखा, फाका किया, शामको प्रार्थनामें शामिल हुए, दुआयें कीं। वह एक ऐसा दिन था, जब इस बढ़े भारी मुल्कमें, इस विशाल देशमें, तीस करोड़ औरत और मर्द नहीं थे, बल्कि तीस करोड़ सिरोंवाला और साठ करोड़ हाथ-पैरोंवाला एक ही 'राष्ट्रपुरुष' था। उस दिन देश एक हो गया था। राष्ट्रीय एकताका वह एक अनोखा दृश्य था।

राष्ट्रीय उपवासका वह दिन हिन्दुस्तानके इतिहासमें अमर हो चुका है।

४६. प्रेमके उपवास

देशका बच्चा-बच्चा जानता है कि गांधीजी क्या चाहते हैं। वे चाहते हैं –

कोई किसीको न मारे। कोई किसीको न सताये।

यही उनका उपदेश है। यही वे चाहते हैं।

यही वजह है कि जो बालक उनकी राष्ट्रीय शालाओंमें या कौमी मदरसोंमें पढ़ते हैं, वे नहीं जानते कि मार किस चिड़ियाका नाम है। वहाँ बच्चोंको मारपीटका जरा भी डर नहीं रहता। अगर कोई शिक्षक मारने उठता है, तो बालक खड़ा होकर पूछ सकता है – 'गांधीजी तो मारपीटको बुरा समझते हैं, फिर आप मारते क्यों हैं ?'

बच्चोंसे गलती हो जाने पर भी गांधीजी उन्हें मारते नहीं; न तानों-तिश्नोंसे उन्हें शरमाते और बेइज्जत ही करते हैं। लेकिन जब बच्चोंसे कोई बड़ा गुनाह, बड़ी गलती हो जाती है, तो गांधीजी उसकी सजा खुद भुगत लेते हैं – खुद भूखों रह जाते हैं। यह उनका अपना तरीका है।

एक दफा उन्होंने इसी तरह आठ दिनके और दूसरी दफा चौदह दिनके उपवास किये थे। वे कहते हैं, बच्चोंके दोषके लिए, उनकी गलतियोंके लिए, मैं उन पर गुस्सा क्यों होऊँ ? खुद मेरे अन्दर ऐसी कोई बुराई होनी चाहिए, जिससे बालकोंको भी बुरा काम करनेकी बात सूझी। अगर मैं पवित्र हूँ, तो मेरे पास रहनेवाले बालक अपवित्र कैसे हो सकते हैं ? मैं पाक और ये नापाक क्यों ? अगर मैं सच्चे मानोंमें अहिंसक हूँ, अहिंसाका ठीक-ठीक पालन करता हूँ, तो यह हो नहीं सकता कि कोई बालक मुझसे डरे – अपनी गलतियाँ मुझसे छिपावे।

बस, इन्हीं विचारोंके कारण गांधीजी ऐसे मौकों पर खुद उपवास कर लेते हैं। बच्चोंको सजा नहीं देते।

अब कौन ऐसा बालक होगा, जो इस अपार प्रेमके आगे अपना सर न झुकायेगा ?

४७. महान् उपवास

गांधीजीने हिन्दुओं और मुसलमानोंको बहुतेरा समझाया, लेकिन वे लड़नेसे बाज न आये।

गांधीजीने कहा: 'भाइयो, हम एक ही देशकी सन्तान हैं। हमें लड़ना न चाहिए।' लेकिन लड़ाई मिटी नहीं।

गांधीजीने फिर कहा : 'सोचो तो, हमारे बाप-दादे किस तरह मिल-जुलकर रहते थे।' तो भी झगड़े तो होते ही रहे।

गांधीजीने समझाया : 'लड़नेमें किसीकी खानदानी नजर नहीं आती। आप लोग हिलमिलकर रहिये और लड़ना-झगड़ना बन्द कर दीजिए।'

पर किसीने उनकी बात पर कान न दिया। लड़ाईके जोशमें खानदानियतकी परवाह कौन करे ?

गांधीजीने चेतावनी देते हुए कहा : 'याद रखिये, जब तक आप एक न होंगे, आपको स्वराज्य भी नहीं मिलेगा |'

लेकिन जहाँ दिमागमें गुस्सा भरा हो, वहाँ स्वराज्यकी बातें कौन सुनता ?

गांधीजीने फिर चेताया और कहा : 'देखो, दोकी लड़ाईमें तीसरेका फायदा हो रहा है। जरा आँखें खोलकर देखो।'

पर आँखें तो मारे गुस्सेके अन्धी हो रही थीं। वे क्योंकर खुलतीं ?

आखिर जब गांधीजी कहते-कहते थक गये और किसीने उनकी न सुनी, तो जानते हो उन्होंने क्या किया ?

बस एक दिन २१ दिनके उपवासका कठिन व्रत लेकर बैठ गये।

उन दिनों गांधीजी दिल्लीमें थे और महान् मुसलमान डॉक्टर अनसारीके घर रहते थे। वहीं उन्होंने अपने २१ दिनके उपवास शुरू किये। गांधीजी हँसते-हँसते भूखकी पीडायें सहते, और अनसारीजी गद्गद भावसे उपवासी गांधीजीकी सेवा करते।

४८. स्वराज्य

हिन्दुस्तानके दादा मरहूम (स्वर्गीय) दादाभाई नौरोजीने देशके सामने स्वराज्यका मंत्र रखा।

स्वर्गीय लोकमान्य तिलकने उसे गाँव-गाँव और घर-घर पहुँचाया।

गांधीजीने गाँव-गाँवमें और घर-घरमें स्वराज्यके लिए यज्ञ शुरू कराया – कुर्बानीका सिलसिला चलाया।

हिन्दुस्तानके दादाने किताबोंको मथ-मथकर यह पता लगाया कि इस मुल्ककी बड़ीसे बड़ी बीमारी भूख है।

तिलक महाराजने छः साल तक जेलके अन्दर बन्द रहकर देशवालोंकों यह सिखाया कि स्वराज्य ही इस भूखको मिटा सकता है।

अब गांधीजी अपनी तपस्यासे देशको एक नया पाठ, नया सबक सिखा रहे हैं। वे कहते हैं–

'देशकी बीमारी स्वराज्यसे ही मिटेगी, और स्वराज्य खादीसे ही मिलेगा।'

यह न समझो कि स्वराज्यकी लडाई बड़े-बडे लड़वैये ही लड़ सकते हैं। नहीं, छोटे-छोटे बच्चे भी उसमें सिपाहीका काम कर सकते हैं। अगर तुम स्वराज्यकी सेनाके सिपाही बनना चाहते हो, तो नीचे लिखे काम करनेका निश्चय कर लो और स्वराज्यके सैनिक बन जाओ।

१. विदेशी कपड़ा पहनना छोड़ दो, और शुद्ध खादी पहनने लगो।

२. देशकी आजादीके लिए रोज सूत कातो।

३. गुलामीको बढ़ानेवाली तालीमसे परहेज करो। ऐसी तालीम लो, ऐसे मदरसोंमें पढ़ो, जहाँ पढ़नेसे दिलमें देशभक्तिके भाव पैदा हों।

४. अपनी मातृभाषा (मादरी जबान) और राष्ट्रभाषा (कौम जबान) को अच्छी तरह सीखो। अंग्रेजीको पराई माँ समझो, और उसके दूधकी ज्यादा उम्मीद न रखो।

५. यह समझ लो कि हमारा हिन्दुस्तान गाँवोंका देश है, जिसमें लाखों गाँव हैं; और गाँवोंमें गरीबीका पार नहीं है। इन गाँवोंसे प्रेम करना सीखो। गाँवोंमें जाकर बसनेके सपने देखो। गाँवकी बनी हुई चीजोंका उपयोग अभिमानके साथ करो।

६. हरिजनोंके बच्चोंको अपने पास प्रेमसे बैठने और पढ़ने दो। अगर हम चाहते हैं कि हमें स्वराज्य मिले, तो हमारा फर्ज है कि हम सबसे पहले हरिजनोंको पूर-पूरा स्वराज्य दे दें।

४९. अंग्रेजोंसे

गांधीजीने 'हिन्द स्वराज्य' नामकी एक किताब लिखी है। उसमें उन्होंने स्वराज्यके बारेमें अपने विचार बहुत विस्तारसे समझाये हैं। किताब सम्पादक और पाठकके बीच हुई एक बातचीतके ढंग पर लिखी गई है।

पाठक पूछता है : 'अंग्रेजोंसे आप क्या कहेंगे ?'

हम भी यही सवाल पूछना चाहते हैं।

सम्पादककी हैसियतसे गांधीजीने इस सवालका नीचे लिखा जवाब दिया है। इस जवाबसे हमें गांधीजीके विचारोंको समझनेका मौका मिलता है।

सम्पादक कहता है :

मैं उनसे (अंग्रेजोंसे) निहायत नरमीके साथ कहूँगा कि आप हमारे राजा जरूर हैं। अपनी तलवारके जोरसे हैं या हमारी मरजीसे, इस सवालकी बहसमें पड़नेकी मुझे कोई जरूरत नहीं है। आप मेरे देशमें रहना चाहें, रहें; मुझे आपसे कोई दुश्मनी नहीं। लेकिन राजा होते हुए भी रिआयाके सामने तो आपको नौकरकी तरह ही रहना होगा। आपका हुक्म हमें नहीं, बल्कि हमारा हुक्म आपको मानना होगा।

अब तक आप यहाँसे जो धन ले गये, सो तो आप हजम कर गये; लेकिन अब आगे अैसा न हो सकेगा।

आप हिन्दुस्तानकी रखवालीके लिए यहाँ रहना चाहें, तो रह सकते हैं। लेकिन हमारे साथ व्यापार करके हमें लूटनेका लालच तो आपको छोड़ ही देना होगा।

आप जिस सभ्यताके हामी हैं, हम उसे सभ्यता ही नहीं समझते। अपनी सभ्यताको हम आपकी सभ्यतासे कहीं अच्छी समझते हैं। आप भी इसको समझ लें तो आपका फायदा

ही है। लेकिन अगर आपको यह न सूझे, तो भी आप ही की एक कहावतके मुताबिक आपको हमारे देशमें देशी बनकर रहना चाहिये।

आपको ऐसा कोई काम न करना चाहिए, जो हमारे धर्ममें रुकावट डाले। हाकिमकी हैसियतसे आपका फर्ज है कि आप हिन्दुओंके खातिर गायका और मुसलमानोंके खातिर सुअरका मांस खाना छोड़ दें। अब तक हम दबे हुए थे, इससे कुछ कह नहीं पाये; लेकिन आप यह न समझिये कि हमारे दिल दुखे नहीं हैं। हम अपनी खुदगर्जी और अपने दब्बूपनसे अब तक कुछ कह नहीं सके, लेकिन अब तो कहना हमारा फर्ज हो गया है।

हम मानते हैं कि आपके खोले हुए मदरसे और आपकी अदालतें हमारे किसी कामकी नहीं। उनके बदले हमें अपनी असली अदालतें और असली मदरसे खोलने होंगे।

हिन्दुस्तानकी भाषा अंग्रेजी नहीं, हिन्दुस्तानी है। वह आपको सीखनी होगी और हम तो अपना सारा व्यवहार आपसे अपनी ही भाषामें रख सकेंगे।

आप जिस तरह रेलों और फौजों पर पानीकी तरह पैसा बहाते हैं, उसे हम सह नहीं सकते। हमें उनकी कोई जरूरत नहीं मालूम होती। आपको रूसका डर होगा। हमें नहीं है। जब वे आयेंगे, हम देख लेंगे। अगर उस वक्त आप भी रहे, तो दोनों मिलकर देख लेंगे।

हमें विलायत या यूरोपके कपड़ेकी जरूरत नहीं है। हम तो अपने देशमें बनी चीजोंसे अपना काम चला लेंगे। यह हो नहीं सकता कि आप एक आँख मैंचेस्टर पर रखें और दूसरी हम पर।

जब आप समझ लेंगे कि हमारा और आपका एक ही स्वार्थ है, और उसी तरह बरतेंगे, तभी हम आपको साथ दे सकेंगे।

मैं आपके साथ गुस्ताखीसे पेश नहीं आ रहा हूँ। मेरा मतलब साफ है। आपके पास हथियारोंकी ताकत है। जबर्दस्त जहाजी बेड़ा है। इनका मुकाबला हम इन्हीं चीजोंसे नहीं कर सकते। फिर भी ऊपर जो कुछ कहा है, वह आपको मंजूर न हो, तो हम आपके साथ

रह नहीं सकते। आप चाहें, और आपसे हो सके, तो आप हमें कत्ल कर डालिये। जी चाहे तोपसे उड़ा दीजिये। लेकिन जो चीज हमें पसन्द नहीं है, उसमें हम आपकी हरगिज मदद न करेंगे; और बिना हमारी मददके आप एक कदम भी बढ़ न सकेंगे।

मुमकिन है कि हकूमतकी मस्तीमें, सत्ताके घमण्डमें आप हमारी इस बातको हँसीमें उड़ा दें। और हो सकता है कि हम फौरन ही आपको यह न दिखा सकें कि इस तरह हँसना बेकार है। लेकिन अगर हममें ताकत होगी, तो आप देखेंगे कि आपकी यह मस्ती निकम्मी थी, और हँसी उलटी अक्लकी निशानी थी।

हम मानते हैं कि दिलसे आप भी एक ऐसी कौमके लोग हैं, जो धर्मको मानती है। हम तो धर्मभूमिके ही निवासी हैं। आपका हमारा साथ कैसे हुआ, जिसकी बहसमें पड़ना फिजूल है। लेकिन अपने इस सम्बन्धका उपयोग हम अच्छे काममें कर सकते हैं। जो अंग्रेज हिन्दुस्तानमें आते हैं, वे अंग्रेजी प्रजाके सच्चे नुमाइन्दे या प्रतिनिधि नहीं होते। इसी तरह हम लोग भी, जो आधे अंग्रेज बन गये हैं, अपनेको हिन्दुस्तानकी असली प्रजाके सच्चे प्रतिनिधि नहीं कह सकते। अगर विलायतके अंग्रेजोंको हिन्दुस्तानकी हुकूमतका कच्चा चिठ्ठा मालूम हो जाय, तो वे जरूर आपका विरोध करेंगे। हिन्दुस्तानके लोगोंने तो आपके साथ नाममात्रका ही सम्बन्ध रखा है।

अगर आप अपनी सभ्यताको, जो दरअसल सभ्यता नहीं है, छोड देंगे और अपने धर्मका विचार करेंगे, तो आप खुद महसूस करेंगे कि हमारी माँग वाजिब और मुनासिब है। इसी तरह आप हिन्दुस्तानमें रह सकते हैं।

अगर आप इस तरह रहेंगे, तो हमें आपसे जो कुछ सीखना है, हम सीखेंगे; और हमसे आपको जो बहुत-कुछ सीखना है, आप सीखियेगा। इस तरीकेसे हम दोनों फायदेमें रहेंगे और दुनियाको भी फायदा पहुँचायेंगे। लेकिन यह होगा तभी, जब हमारा और आपका सम्बन्ध धर्मकी नींव पर कायम किया जायगा – उसकी तहमें धर्म होगा।

५०. प्रेम

क्या बात है कि हम सब गांधीजीसे इतना ज्यादा प्रेम करते हैं ?

बात यह है कि उनके दिलमें हमारे लिए प्रेम ही प्रेम भरा हुआ है।

क्या वजह है कि गांधीजीसे किसीको कोई दुश्मनी नहीं।

वजह यह है कि उनके दिलमें किसीके लिए कभी दुश्मनीके ख़याल ही नहीं आते।

गांधीजी अंग्रेज सरकारके अत्याचारोंका कड़ेसे कड़ा विरोध करते हैं, फिरभी बहुतेरे अंग्रेज हैं, जो गांधीजीसे मुहब्बत रखते हैं। इसलिए कि गांधीजीके मनमें अंग्रेजोंके लिए भी प्रेम ही भरा हुआ है।

तुमसे कोई काम बिगड़ जाय, कोई गलती हो जाय, और मैं तुम पर गुस्सा होऊँ, तो इसमें मेरी बड़ाई क्या ? ऐसा तो जानवर भी करते हैं। आदमी वह है, जो गुनहगारोंको भी अपने प्यारसे नहलाता रहे; प्रेमके साथ उनकी शरारतोंको सहता रहे।

गांधीजी ऐसा ही करते हैं। वे किसीसे दुश्मनी नहीं रखते; इसीलिए उन्हें भी कोई अपना दुश्मन नहीं समझता। वे सबको अपने प्रेमसे नहलाते रहते हैं, इसीसे हमारे दिलोंमें भी उनके लिए प्रेम ही भरा रहता है।

५१. गांधीजीकी अहिंसा

'अहिंसासे तुम क्या समझे ?'

'किसीकी हिंसा न करना। किसीको न मारना; न सताना।'

'वैसे, किसीके लिए मनमें गुस्सा रखना भी हिंसा ही है। इसलिए मनमें इस तरहकी हिंसाको भी जगह न देना, और मनके कोने-कोनेको प्रेमसे भरे रहना अहिंसा है।

'लेकिन जब कोई हम पर हमला करे, तो हम अहिंसाका पालन कैसे करें ?'

'सच पूछो तो ऐसे वक्त ही अहिंसाकी सच्ची परीक्षा होती है। जब कोई सताता नहीं, गुस्सा होता नहीं, तब तो कुत्ते-बिल्ली भी अहिंसक रह लेते हैं। लेकिन वह अहिंसा किस कामकी ?'

'अगर इस तरह हर किसीकी मार खाकर बैठ जायँ, तो दुनिया हमें डरपोक न कहेगी ?'

'डरपोक क्यों कहेगी ? हम मार खाकर न तो रोते हैं, और न मारके डरसे भागते ही हैं। प्रेमके कारण हमें गुस्सा नहीं आता, हम किसी पर हाथ नहीं उठाते, तो डरपोक कैसे बन जाते हैं ?'

'भाई, यह तो बड़ी टेढ़ी खीर है। मारनेवालेको न मारना, सतानेवालेसे प्यार करना, बहुत ही मुश्किल है। इससे अच्छा और आसान तो यह है कि जो हमें मारे, उसे हम भी मार दें।

'सच कहते हो। अहिंसक बनना आसान नहीं है। अहिंसाका मार्ग शूरोंका है। अहिंसा शेरदिलोंकी है, कायरों और डरपोकोंकी नहीं।'

गांधीजी ऐसी ही अहिंसाका पालन करते हैं, और हमसे भी कहते हैं कि हम सच्चे अहिंसक बनें।

५२. आत्मबल

आज दुनियामें मार-धाड़ करनेवालोंका बड़ा जोर है। वे कहते हैं : 'इसने हमें सलाम नहीं किया, हम इसे मार डालेंगे।'

गांधीजी हाथ उठाकर और पुकार-पुकारकर कहते हैं :

'अय भारतवासियों, तुम न तो इस कोलाहलमें शामिल होओ, न इससे डरकर भागो। तुम अपनी अहिंसा पर डटे रहो। जब सारी दुनिया लड़-झगड़कर थक जायगी, तो हमींसे अहिंसा सीखने आयेगी।

'कोई अपने मनमें यह डर न रखो कि अगर हम अहिंसाका पालन करेंगे, तो सब मिलकर हमें मार डालेंगे। तुम अहिंसाको पहचानते नहीं, इसी कारण उससे डरा करते हो। अहिंसा वह चीज है, जिससे दुश्मन भी दोस्त बन जाते हैं।'

दुनियाके लोगोंको गांधीजीके इस उपदेश पर विश्वास नहीं बैठता। उन्हें इसकी सच्चाईका इतमीनान नहीं होता।

अगर किसी देशके पास एक लाख फौज है, तो दूसरा पाँच लाख रखता है, और तीसरा दस लाख।

एक देशके पास सौ लड़ाकू जहाज हैं, तो दूसरेके पास दस सौ, और तीसरेके पास दस हजार।

अगर एक देश सौ हवाई जहाज रखता है, तो दूसरा पाँच सौ, और तीसरा पाँच हजार।

जिसके पास जितने कम हवाई जहाज हैं, उसे उतनी ही कम नींद आती है, और उस पर रात-दिन अपने जहाजोंकी संख्या बढ़ानेकी फिक्र सवार रहती है।

फिर ये विमान, ये यान, मुफ्तमें नहीं बनते।

इनके पीछे करोडों-अरबों रुपयोंका धुआँ उड़ जाता है।

ये करोड़ों आते कहाँसे हैं ?

आते हैं प्रजाके पसीने और प्रजाके खूनसे |

गांधीजीने अहिंसाके जो हथियार हमें दिये हैं, वे ये हैं :

सत्याग्रह।

असहयोग।

बलिदान।

हँसते-हँसते मुसीबतोंका सामना करनेवाली जनताको देखकर अत्याचारीका अत्याचार निस्तेज हो जाता है। जल्लादके हाथ काँप उठते हैं। शिकारको कराहते देखकर ही न शिकारीका दिल नाचता है ?

तो बताइये कौन ताकत बड़ी है ? तोपकी या अहिंसाकी ? कौन बल बड़ा है? तोप-तलवारका या आत्माका ?

गांधीजी सुनी या पढ़ी हुई बात नहीं कहते। तरहतरहके संकट सहन करके उन्होंने अहिंसारूपी रत्न पाया है।

अहिंसामें ही भारतवर्षका उद्धार और जय जयकार है।